नियम लिख दिए हैं और दो एक सीधे और उपयोगी यन्त्रों के बनाने और प्रयोग करने की प्रक्रिया बतला दी है। आशा है कि उत्साही जिज्ञासुओं को इनसे सहायता मिलेगी और वे इनसे काम आरभ करके क्रमश उत्तरोत्तर उन्नति करते जॉयगे।

पुस्तक में जो पारिभाषिक शब्द आए हैं उनमे से अधिकाश मुझको काशी की नागरीप्रचारिणी सभा के वैज्ञानिक कोष से मिले हैं। दो एक को छोड कर तारों और नक्षत्रों के सस्कृत नाम भी मैंने इस कोष से ही लिए हैं। मुख्य मुख्य शब्दों का एक कोष पुस्तक के अत में दिया गया है। सुभीते के लिये आकाशवर्त्ती पिंडों के नामों की अनुक्रमणिका अलग दी गई है।

हम भारतवासियों को इस बात का अभिमान है कि किसी समय में ज्योतिष ने हमारे यहाँ बड़ी उन्नति की थी। यह अभिमान अनुचित नहीं है परतु इस पुस्तक के अवलोकन से प्रतीत हो जायगा कि पाश्चात्य विद्वानों ने पिछली दो तीन शताब्दियों में इस विद्या की कैसी अश्रुतपूर्व वृद्धि की है। जो कुछ पूर्वकालीन ज्योतिषी जानते थे वह आधुनिक विद्या के विस्तार के सामने निरतिशय हलका पड जाता है। इससे हमारी श्रद्धा प्राचीन ज्योतिषियों के लिये कम नहीं होती परतु आज कल के ज्योतिषियों के लिये बढ अवश्य जाती है। इन बातों से हमारा उत्साह और भी बढना चाहिए क्योंकि विद्या का क्षेत्र अपरिमित है और सरस्वती का सच्चा उपासक कभी रिक्तपाणि नहीं रहता।

पुस्तक के किसी किसी अध्याय में आगत्या दार्शनिक विषय आ गए हैं। विशेपतः सृष्टि और प्रलय के अध्याय में ऐसे विषय का आना अनिवार्य्य था। जहाँ तक हो सका मैंने निष्पक्ष ही विचार किया है, पर यदि कहीं मैंने किसी धर्म विशेष के सिद्धांतों को प्रधानता दी हो तो पाठकों को कृपया यह स्मरण रखना चाहिए कि मैं अपने उस अधिकार का प्रयोग कर रहा हूँ जिसका युरोप क ग्रंथकार बराबर आश्रय लेते आए हैं।

मैंने जो प्राचीन भारत के ज्योतिष का विस्तृत वर्णन नहीं किया है उसके लिये क्षमा का प्रार्थी हूँ। मेरी समझ में एक प्रारंभिक पुस्तक में इस विषय पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिये प्राचीन यातों का उल्लेख कहीं कहीं केवल प्रसंगतः किया गया है, मुख्यरुपेण नहीं।

मुझे हैक्टर मैकफर्सन के 'दि रोमैंस आफ माडर्न ऐस्ट्रानोमी (The Romance of Modein Astronomy by Hector Macpherson) और मांडर के 'पस्ट्रानोमी विदाउट ए टेलिस्कोप' Astronomy without a telescope by Maunder) से बड़ी सहायता मिली है। इसके लिये मैं इनके लेखकों का अत्यंत ऋणी हूँ।

इंदौर
फाल्गुन कृष्ण ४
१९७३.

संपूर्णानंद।

विषय-सूची।

ज्योतिर्विनोद।

(१) ज्योतिष का महत्व।

वृद्धिह्रासौ कुमुदसुहृदः, पुष्पवन्तोपरागः।
शुक्रादीनामुदयविलयावित्यमी सर्वदृष्टाः॥
आविष्कुर्वन्त्यखिलवपुष्वत्र कुम्भीपुलाक।
न्यायाज्ज्योतिर्नयगतिविदां निश्चलं मानभावः॥

संसार के सब विज्ञानों में ज्योतिष पुराना है। और विज्ञानों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इनको अमुक समय में अमुक व्यक्ति ने विज्ञानरूप से अध्ययन किया, परंतु ज्योतिष के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। असभ्य से असभ्य जातियों ने भी भूयोऽनुभव और भूयोदर्शन के द्वारा ज्योतिष के दो एक सरल सिद्धांतों का पता लगा लिया है, चाहे वे उनको वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार कह न सकती हों। आबाल वृद्ध सब को ही ज्योतिषीय घटनाओं का साक्षात् अनुभव होता है, सूर्य्य, चंद्र और तारागणों का उदयास्त, सूर्य्य और चंद्रग्रहण, केतुदर्शन, उल्कापात, ये दृग्विषय मूर्ख और पंडित दोनों के हृदयों को मुग्ध कर देते हैं।

ज्योतिष के अध्ययन में एक ऐसा सुभीता है जो और और विज्ञानांगों में नहीं है। इसके लिये बहुमूल्य यंत्रों, विस्तृत और सुसज्जित प्रयोगशालाओं और कठिन प्रयोगों की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि ज्योतिष के संबंध में भी यंत्रादि होते हैं, पर उनकी आवश्यकता विशेषतः उन लोगों को है जो नूतन आविष्कार करना चाहते हों या इस विषय के पूर्ण आचार्य्य होना चाहते हों। साधारण मनुष्य को यह सब कुछ भी नहीं चाहिए। प्राचीन काल के ज्योतिषियों ने बहुत से आविष्कार बिना किसी यंत्र ही के किए थे। मनुष्य को यदि धैर्य्य हो तो वह अब भी बहुत सी नई बातों का पता लगा सकता है। आकाश रूपी प्रयोगशाला में महतारादि निर्णय तत्व स्वयं हमारे सामने आते हैं, मानों हम से इस बात की प्रार्थना करते हैं कि हम उनकी परीक्षा करें। यदि इतने पर भी हम उनको आँख उठा कर न देखें तो यह हमारा ही दोष है। जो मनुष्य सांसारिक झगड़ों में इतना उलझा रहता है कि उसे अमृतस्रावी शरचंद्र-विभूषित, या तारा-जटित आकाश की ओर देखने का अवकाश नहीं मिलता उसका जीवन वस्तुतः नीरस है। वह ईश्वर के दिए हुए आनंद के स्रोत से हठात् पराङ्मुख हो गया है, परंतु जैसा कि Maunders (मानडर्स) कहते हैं—

'Even in these days, there are still men who delight to see spread out before them night after night the glories of the heavens, and to read the page where every letter is a glittering

world, and to whom that high contemplation never failes to bring a 'certain joyful calm'.

अर्थात् 'इस काल में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जिनको प्रति रात्रि आकाश की उस श्री को, जो चारों ओर फैली हुई है देखने में और उस पुस्तक को, जिसका प्रत्येक अक्षर एक चमकता हुआ जगत् है, पढ़ने में आनंद मिलता है, और जिनको इस उन्नत निरीक्षण से सदैव एक प्रकार की सुखमय शांति प्राप्त होती है।' वह मनुष्य जो शीघ्र इन भाग्यशाली व्यक्तियों की शैली में नहीं मिलता अपने को व्यर्थ एक अलौकिक सुख से वंचित कर रहा है।

परंतु ज्योतिष से हमको केवल मानसिक सुख ही नहीं मिलता वरंच आधिभौतिक लाभ भी होते हैं। हमारा समय-विभाग ज्योतिष पर ही निर्भर है। यदि हमको ज्योतिष का ज्ञान न हो तो हम अपने धार्म्मिक और सामाजिक तिहवारों और उत्सवों को ठीक प्रकार से न मना सकेंगे, कोई वार्षिक कृत्य उचित समय पर न कर सकेंगे, व्यवहार और व्यापार अनिश्चित हो जायँगे और सभ्य शासन न हो सकेगा। कृषक लोग भी अपने काम भर ज्योतिष जानते हैं। वे जानते हैं कि किस मास के किस नक्षत्र में वृष्टि अच्छी होती है, और इसलिये उनको कब बीज वपन करना चाहिए। यदि ज्योतिष के इन उपयोगी तत्वों का प्रचार न होता तो कृषक का अधिकांश परिश्रम निष्फल जाता।

ज्योतिष के दो विभाग हैं। पहला तो वह जो दृष्ट विषयों से संबंध रखता है। किसी खगोलवर्त्ती पिंड को बार बार देख कर उसके संबंध में बहुत सी बातें गणित द्वारा बतलाई

जा सकती हैं, इसीलिये इसको गणित ज्योतिष कहते हैं। दूसरा विभाग फलित ज्योतिष कहलाता है। इस द्वितीय शास्त्र के आचार्य्यों का यह कथन है कि ग्रहों और उपग्रहों की गति का मनुष्य के प्रारब्ध के साथ एक प्रकार का संबंध है। किसी व्यक्ति के जन्म के समय सूर्य्य, चंद्र, शुक्र, मंगल इत्यादि जिन जिन स्थानों में थे उनका ज्ञान होने से उस व्यक्ति के जीवन के संबंध में बहुत सी बातें ज्ञात हो सकती हैं। आजकल फलित ज्योतिष को झूठा समझना और उसकी निंदा करना एक प्रकार का फैशन या सर्वप्रिय प्रथा हो गई है। इसका मूल कारण यह है कि अच्छे फलित-ज्योतिषवेत्ता कम मिलते हैं। पर शास्त्रियों के अभाव से शास्त्र झूठा नहीं कहा जा सकता। मुझे फलित ज्योतिष में कोई बात अयुक्त नहीं देख पड़ती।

अस्तु, जो कुछ हो इस पुस्तक में केवल गणित ज्योतिष का विषय लिया गया है क्योंकि यही फलित का भी—चाहे वह सत्य हो वा असत्य—मूल है, परंतु केवल पुस्तक पढ़ने से ज्योतिष नहीं आ सकती। जिसको ज्योतिष के तत्वों से अभिज्ञ बनना हो उसे नियमपूर्वक कुछ काल दिशावलोकन में व्यतीत करना चाहिए। खेद की बात है कि हमारे देश के बहुत से बड़े बड़े ज्योतिषी साधारण तारों और ग्रहों को नहीं पहचानते। उनके नाम तो वे पुस्तकों से रट लेते हैं पर आँख उठा कर उनको देखने का प्रयत्न नहीं करते। वे यह नहीं सोचते कि जिस प्रकार हमारे ग्रंथकारों ने इन पिंडों को देखा था उसी प्रकार हम भी देखें। यदि कोई मनुष्य थोड़े से भी

धैर्य्य से काम ले तो इस में रत्ती भर संदेह नहीं कि ज्योतिष से उसको एक अनुपम मानसिक, हार्दिक और आत्मिक लाभ हो सकता है।

---

(२) पृथिवी।

कई कारणों से हमको पृथिवी का विचार सब से पहले करना पड़ता है। इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि यह तारों और ग्रहों में सब से बड़ी या महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः इसका परिमाण बहुत ही छोटा है। परंतु हम इस से औरों की अपेक्षा अधिक परिचित हैं और इसके संबंध में हमको जो कुछ ज्ञात है उसकी सहायता से हम अन्य खगोलवर्ती पिंडों की अवस्था को समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त यही हमारा मुख्य वेधालय है। इसी पर बैठे बैठे हम सब तारों और ग्रहों को देखते हैं। इसी पर सवार हो कर हम अन्य पिंडों के कभी तो निकट जाते हैं और कभी उन से दूर हो जाते हैं। अतः सब से पहले इसी का विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

जैसा मैंने ऊपर कहा है इसका परिमाण बहुत छोटा है। इसका व्यास ८००० मील अर्थात् ४००० कोस से भी कुछ कम है। इसका तात्पर्य्य यह है कि यदि हम ऊपर तल से खोदते हुए पृथिवी के केंद्र तक चले जा सकें तो हमको २००० कोस से भी कुछ कम चलना पड़ेगा और इतना ही और चलकर हम दूसरी ओर फिर पृथिवी तल पर पहुँच जायँगे। इस गणना के अनुसार इसका घनफल लगभग ३३,४०,००,००,००० घन कोस हुआ। (जितना स्थान कोई वस्तु घेरती है उसे उसका घनफल कहते हैं)।

इसके आकार के संबंध में प्राचीन काल से विवाद चला आता है। बहुत से लोग इसको चिपटी समझते थे। परंतु प्राचीन काल के विद्वानों ने भी थोड़े से विचार के उपरांत यह निश्चय कर लिया था कि यह चिपटी नहीं प्रत्युत गोल है। 'भूगोल' शब्द ही इस बात का प्रमाण है। भूगोल की प्रारंभिक पुस्तकों में पृथिवी की गोलाई के अनेक प्रमाण दिए रहते हैं। अब आज कल सिवा अशिक्षित पुरुषों के और कोई इसे चिपटी नहीं कहता।

परंतु गोलाई कई प्रकार की होती है। गेंद भी गोल होता है, अंडा भी गोल होता है, नारंगी भी गोल होती है। पृथिवी के आकार में किस प्रकार की गोलाई है इस विषय में बहुत मतभेद है। बहुत लोग इसकी नारंगी से तुलना करते हैं। अभी तक यह विषय निर्विवाद रूप से स्थिर नहीं हो सका है पर इतना निश्चय है कि पृथिवी गेंद के समान गोल नहीं है प्रत्युत कुछ अंडगोलाकार है और अपने उत्तर और दक्षिण-तम स्थानों पर, जिनको कि उत्तरीय और दाक्षिणीय ध्रुव कहते हैं, कुछ दबी हुई सी है।

ज्योतिष की किसी पुस्तक में पृथिवी के विस्तृत भूगोल देने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय का ज्ञान करानेवाली अनेक पुस्तकें हैं। यद्यपि नदी, पर्वत, ज्वालामुखी, समुद्र आदि के बनने बिगड़ने का ज्योतिष से भी बहुत कुछ अंतरंग संबंध है, परंतु इन बातों का विचार हम पीछे करेंगे। यहाँ पर हम पृथिवी की गति का विचार करना चाहते हैं।

पृथिवी ग्रह है। ग्रह उस खगोलवर्त्ती पिंड को कहते हैं जो किसी अन्य स्थिर खगोलवर्त्ती पिंड के चारों ओर घूमता हो। वह पिंड जो स्थिर है अर्थात् जो स्वयं किसी अन्य पिंड की परिक्रमा नहीं करता, तारा कहलाता है।

ग्रह शब्द के प्रयोग में सावधानी से काम लेना चाहिए। संस्कृत साहित्य में पृथिवी को ग्रह तो माना है पर इसके साथ ही साथ सूर्य्य को भी ग्रह बतलाया है। आधुनिक विज्ञान सूर्य्य को तारों की श्रेणी में रखता है और पृथिवी को उसका एक ग्रह बतलाता है। पृथिवी के ग्रह होने के कई प्रमाण दिए जाते हैं; जिनमें से कुछ का उल्लेख आगे किया जायगा। इस प्रारंभिक ग्रंथ में हम इस बात को निर्विवाद मान लेंगे कि पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है।

इस परिभ्रमण के अतिरिक्त पृथ्वी में एक प्रकार की और गति है। यह हम बतला चुके हैं कि पृथ्वी के उत्तरीय और दक्षिणीय सिरों को उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव कहते हैं। यदि इन दोनों ध्रुवों के बीच में एक रेखा खींची जाय तो वह पृथ्वी के केंद्र में से होती हुई दोनों ध्रुवों को मिला देगी। यद्यपि वस्तुतः ऐसी कोई रेखा खींची हुई नहीं है, परंतु वैज्ञानिकों ने इस प्रकार की एक रेखा कल्पित कर ली है। इसको पृथ्वी का अक्ष या भ्रमणाक्ष कहते हैं। भ्रमणाक्ष कहने का कारण यह है कि पृथ्वी सदैव इस कल्पित रेखा के चारों ओर घूमा करती है।

आपने बालकों को लट्टू घुमाते देखा होगा। जिस प्रकार लट्टू अपने अक्ष के चारों ओर घूमता रहता है उसी

प्रकार पृथ्वी भी घूमती है । दिन रात का हाविषय इसी घूमने पर निर्भर है। ऊपर के चित्र को देखिए। पृथ्वी का एक भाग सादा बना दिया गया है । इसके सामने एक बड़ा पिंड है, जिसका नाम सूर्य्य है । दूसरी ओर एक छोटा पिंड है, जिसका नाम चद्रमा है। मान लीजिए कि दिन के किसी समय (सुभीते के लिये दोपहर के उपरांत) यह सादा भूभाग सूर्य्य के सामने है। पृथ्वी तो घूम ही रही है, धीरे धीरे यह भाग सूर्य्य के सामने से हटने लगेगा और यहां संध्या होने लगेगी। साथ ही साथ यह ज्यों ज्यों सूर्य्य के सामने से हटता जायगा, चंद्रमा के सामने आता जायगा यहाँ तक कि थोड़ी देर में सूर्य्य पूर्णतया अदृश्य हो जायगा और इस भाग में रात हो जायगी। परंतु पृथ्वी के घूमने से यह धीरे धीरे चंद्रमा के सामने से भी हटता जायगा और ज्यों ज्यों सूर्य्य की ओर आता जायगा प्रकाश बढ़ता जायगा। इसी प्रकार यहाँ सवेरा हो जायगा और फिर धीरे धीरे जब यह सूर्य्य के ठीक सामने होगा तो यहाँ दोपहर होगी। इसी प्रकार नित्य प्रति पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से दिन और रात का क्रम चलता

रहता है। एक लंप के सामने एक गेंद रख कर उसको धीरे धीरे घुमाने से यह बात सरलता से समझ में आ सकती है।

पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है, इसीलिये सूर्य्य, तारे आदि पूर्व से पश्चिम की ओर जाते देख पड़ते हैं। यह एक स्वाभाविक बात है कि हम जब किसी ओर को जाते हैं, तो पास की स्थिर वस्तुएं हम से उल्टी ओर को जाती प्रतीत होती हैं।

इस घूमने में पृथ्वी को २४ घंटे और ४८ मिनट लगते हैं। जो तारा जिस स्थान पर हमको आज देख पड़ा है, इतने काल के पीछे वह फिर वहीं पर होना चाहिए। इसीलिये मिनटों को छोड़ कर सुभीते के लिये २४ घंटे का दिन रात मानते हैं, जिसमें से लगभग १२ घंटे दिन के और १२ रात के होते हैं।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे यह न समझना चाहिए कि चंद्रमा गति-हीन और स्थिर है। चंद्रमा में भी एक प्रकार की स्वगति है परंतु चंद्रमा का रात को देख पड़ना और प्रति रात्रि पूर्व से पश्चिम को चलना पृथ्वी के अक्षभ्रमण के कारण होता है।

अब हम फिर उस गति का विचार करेंगे जिसका कथन पहले हो चुका है, अर्थात् पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करना। इस परिक्रमा में पृथ्वी को लगभग ३६५ दिन लगते हैं। इस इतने समय को साल या वर्ष कहते हैं। एक वर्ष में पृथ्वी सूर्य्य की अपेक्षा ठीक उसी स्थान पर आ जाती है

जहाँ वह पहले थी। उसकी प्रगति प्रति सेकंड १८ मील या ९ कोस है। इस गणना से पृथ्वी एक दिन में ९×६०×६० ×२४ या ७७७५०० कोस के लगभग चलती है और एक साल में इसका लगभग ३६५ गुण अवकाश तै करती है।

आकाश में पृथ्वी जिस मार्ग से सूर्य्य की परिक्रमा करती है उसे क्रांतिवृत्त (Ecliptic) कहते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह कोई वास्तविक सड़क नहीं है किंतु यह एक कल्पित रेखा है जिस पर पृथ्वी चलती है। परंतु साधारण दृष्टि से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है और इसी क्रांतिवृत्त पर हो कर चलता है। ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है और आगे दिए हुए चित्र से समझ में आ सकता है।

इसमें 'सू' सूर्य के लिये और 'पृ' पृथ्वी के लिये लिखा गया है। 'सू' और 'पृ' के साथ जो संख्याएं १, २, ३, लगा दी गई हैं वे स्थानभेद बतलाने के लिये हैं, और रेखाओं के द्वारा वे दिशाएं बतलाई गई हैं जिनमें सूर्य्य देख पड़ेगा।

जिस समय पृथ्वी पृ १ पर है तो सूर्य्य सू १ पर देख पड़ेगा, जब पृथ्वी पृ २ पर है तो सूर्य्य सू २ पर देख पड़ेगा और जब पृथ्वी पृ ३ पर है तो सूर्य्य सू ३ पर देख पड़ेगा। इसी प्रकार सूर्य्य पृथ्वी की गति के कारण क्रांतिवृत्त पर घूमता प्रतीत होता है।

घूमते समय सूर्य्य अनेक तारासमूहों के सामने पड़ जाता है और उनमें से हो कर निकलता हुआ प्रतीत होता है। इन समूहों में से सुभीते के लिये बारह समूह मुख्य मान
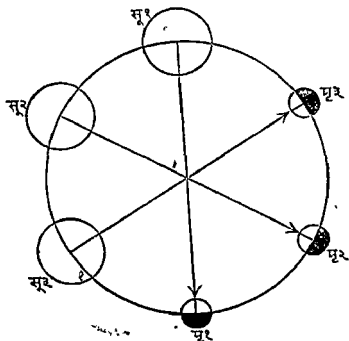
लिए गए हैं क्योंकि इनमें से एक से दूसरे में जाने में सूर्य्य को बराबर समय लगता है। यह समय एक मास के लग भग होता है। इन मुख्य तारासमूहों को राशि कहते हैं और राशियों के समूह को राशिचक्र कहते हैं। इन राशियों के नाम ये हैं—

मेष	Aries	सिंह	Leo	धनु	Sagittarius
वृषभ	Taurus	कन्या	Virgo	मकर	Capricornus
मिथुन	Gemini	तुला	Libra	कुंभ	Aquarius
कर्क	Cancer	वृश्चिक	Scorpio	मीन	Pisces.

इतना स्मरण रखना चाहिए कि चैत्र के महीने में सूर्य्य

का प्रवेश मेप राशि में होता है और फिर क्रमशः एक एक महीने में एक राशि से दूसरी राशि में गमन होता है।

ऊपर जो चित्र हमने पृथ्वी के मार्ग का बनाया है वह गेंद के समान गोल है। वस्तुतः क्रांतिवृत्त का आकार गोल नहीं प्रत्युत दीर्घ वृत्त अर्थात् अंडे का सा है। इस वत्त के केंद्र पर नहीं प्रत्युत एक नाभि पर सूर्य्य है। इससे स्पष्ट है कि कभी तो पृथ्वी घूमती हुई सूर्य्य के निकट आ जाती है और कभी दूर चली जाती है। आकर्पण सिद्धांत के अनुसार (इसका विवरण आगे होगा) जब सूर्य्य निकट होता है तो पृथ्वी की गति कुछ बढ़ जाती है और जब सूर्य्य दूर होता है तो गति कुछ धीमी हो जाती है। भिन्न भिन्न समयों पर सूर्य्य और पृथ्वी की आपेक्षिक स्थिति नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जायगी। इसमें 'सू' सुर्य्य स्थिर है और 'पृ' के साथ संख्या लगा कर भिन्न भिन्न समयों पर पृथ्वी का स्थान बतलाया गया है। 'ना' इस वृत्त की दूसरी नाभि है और 'के' केंद्र है।

पृथ्वी के घूमने के संबंध में इतना स्मरण रखना चाहिए कि उसका अक्ष उसके क्रांतिवृत्त के ऊपर लंब रूप से स्थित नहीं है। जब एक सरल रेखा दूसरी रेखा के ऊपर लंब रूप से स्थित होती है तो उसके दोनों ओर दो समकोण बन जाते हैं, जैसा नीचे दिए हुए चित्र में है।

इसमें क ख रेखा ग घ पर लंब रूप से स्थित है क्योंकि इन दोनों के बीच में जो कोण बने हैं वे समकोण हैं।

परंतु पृथ्वी के अक्ष और क्रांतिवृत्त में समकोण नहीं बनता। इन दोनों के बीच का कोण समकोण के ३/४ से कुछ अधिक अर्थात् ६७ अंश के लगभग है। (एक समकोण को गणित में ९० टुकड़ों में विभक्त करके एक एक टुकड़े को एक एक अंश कहते हैं)। नीचे के चित्र से यह बात समझ में आ जायगी। उ द पृथ्वी का अक्ष है और क्रा वृ क्रांतिवृत्त रेखा, बीच की सीधी रेखा भूमध्य रेखा (Equator) है।

इन दोनों बातों को स्मरण रखने से अर्थात् पहले तो यह कि पृथ्वी का मार्ग अंडे के समान एक दीर्घवृत्त है और दूसरे यह कि इस वृत्त और पृथ्वी के अक्ष के बीच में समकोण नहीं बनता, हम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय अर्थात् ऋतु परिवर्तन को समझ सकते हैं। सुगमता के लिये मैंने १६ वें पृष्ठ पर दिए हुए चित्र में पृथ्वी के केवल चार मुख्य स्थान दिखलाए
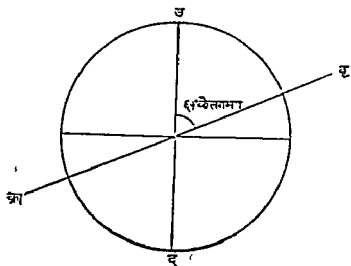
हैं और कोष्ट मे यह भी लिख दिया है कि पृथ्वी उन उन स्थानों में किन किन महीनों में पहुँचती है।

पहला स्थान दिसंबर के महीने का है। इस महीने में पृथ्वी सूर्य्य के निकटतम होती है। अतः इस महीने में गर्मी सब से अधिक पड़नी चाहिए। परंतु जैसा कि चित्र से विदित होता है भूमध्य रेखा के ऊपर का सभी भाग अक्ष के टेढ़े होने के कारण सूर्य्य की ओर से हटा हुआ है। इसी लिये इन दिनों सर्दी पड़ती है। सूर्य्य भी इस ऋतु में जैसा कि चित्र से विदित है सदैव भूमध्य रेखा के नीचे पड़ता है अर्थात् प्रकाश की किरणें भूमध्यरेखा के दक्षिण की ओर से आती हैं। इसी को संस्कृत में सूर्य्य का दक्षिणायन होना कहते हैं। यह दशा भूमध्य रेखा के उत्तर के देशों की है। दक्षिणी देश, जैसे दक्षिणी अमेरिका में इन

• पृथ्वी के घूमने के संबंध में इतना स्मरण रखना चाहिए कि उसका अक्ष उसके क्रांतिवृत्त के ऊपर लंब रूप से स्थित नहीं है। जब एक सरल रेखा दूसरी रेखा के ऊपर लंब रूप से स्थित होती है तो उसके दोनों ओर दो समकोण बन जाते हैं, जैसा नीचे दिए हुए चित्र में हैं।

इसमें क ख रेखा ग घ पर लंब रूप से स्थित है क्योंकि इन दोनों के बीच में जो कोण बने हैं वे समकोण हैं।

परंतु पृथ्वी के अक्ष और क्रांतिवृत्त में समकोण नहीं बनता। इन दोनों के बीच का कोण समकोण के ३/४ स कुछ अधिक अर्थात् ६७ अंश के लगभग है। (एक समकोण को गणित में ९० टुकड़ों में विभक्त करके एक एक टुकड़े को एक एक अंश कहते हैं)। नीचे के चित्र से यह बात समझ में आ जायगी। उ द पृथ्वी का अक्ष है और क्रा वृ क्रांतिवृत्त रेखा, बीच की सीधी रेखा भूमध्य रेखा (Equator) है।

इन दोनों बातों को स्मरण रखने से अर्थात् पहले तो यह कि पृथ्वी का मार्ग अंडे के समान एक दीर्घवृत्त है और दूसरे यह कि इस वृत्त और पृथ्वी के अक्ष के बीच में समकोण नहीं बनता, हम एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय अर्थात् ऋतु परिवर्त्तन को समझ सकते हैं। सुगमता के लिये मैंने १६ वें पृष्ठ पर दिए हुए चित्र में पृथ्वी के केवल चार मुख्य स्थान दिखलाए

हैं और कोष्ट में यह भी लिख दिया है कि पृथ्वी उन उन स्थानों में किन किन महीनों में पहुँचती है।

पहला स्थान दिसंबर के महीने का है। इस महीने में पृथ्वी सूर्य्य के निकटतम होती है। अतः इस महीने में गर्मी सब से अधिक पड़नी चाहिए। परंतु जैसा कि चित्र से विदित होता है भूमध्य रेखा के ऊपर का सभी भाग अक्ष के टेढ़े होने के कारण सूर्य्य की ओर से हटा हुआ है। इसी लिये इन दिनों सर्दी पड़ती है। सूर्य्य भी इस ऋतु में जैसा कि चित्र से विदित है सदैव भूमध्य रेखा के नीचे पड़ता है अर्थात् प्रकाश की किरणें भूमध्यरेखा के दक्षिण की ओर से आती हैं। इसी को संस्कृत में सूर्य्य का दक्षिणायन होना कहते हैं। यह दशा भूमध्य रेखा के उत्तर के देशों की है। दक्षिणी देश, जैसे दक्षिणी अमेरिका में इन

दिनों बड़ी कड़ी गर्मी पड़ती है क्योंकि एक तो वे सूर्य्य के सामने होते हैं और दूसरे निकट। २१ दिसंबर को हमारे यहां सब से छोटा दिन होता है। दिन के छोटे होने का कारण यह है कि ज्यों ज्यों अक्ष सूर्य्य के सामने से हटता जाता है, सूर्य भूमध्य रेखा के नीचे हटता जाता है (अर्थात ऐसा प्रतीत होता है), इसीलिये देर में देख पड़ता है और जल्दी छिप जाता है। (यह स्मरण रहे कि पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करने के साथ ही अपने अक्ष पर भी घूमती जाती है।)

दूसरा स्थान वह है जहाँ पृथ्वी मार्च मास में पहुँचती है। इस समय सारी पृथ्वी पर वसंत ऋतु होती है, क्योंकि पृथ्वी का प्रायः सब ही भाग सूर्य्य के सामने होता है।

सूर्य्य भूमध्यरेखा के सामने से निकलता है। २१ मार्च को दिन और रात बराबर होते हैं।

तीसरा स्थान वह है जहाँ पृथ्वी जून मास में पहुँचती है। इस समय इसका उत्तरीय आधा भाग सूर्य्य के सामने होता है और दक्षिणीय आधा सूर्य्य से हटा हुआ। इसीलिये उत्तरी भाग में गर्मी पड़ती है और दक्षिणी में सर्दी। परंतु दक्षिण की सर्दी उत्तर से कड़ी होती है क्योंकि एक तो वे देश सूर्य्य से हटे हुए हैं और दूसरे पृथ्वी सूर्य्य से अत्यंत दूरी पर है। इन दिनों सूर्य्य सदैव भूमध्यरेखा के उत्तर रहता है अर्थात् प्रकाश की किरणें उत्तर से आती हैं। इसी को सूर्य्य का उत्तरायण होना कहते हैं। ज्यों ज्यों सूर्य्य द्वितीय स्थान से तृतीय की ओर बढ़ता जायगा दिन भी स्वभावतः बढ़ता जायगा। २१ जून को सब से बड़ा दिन होता है।

चौथा स्थान वह है जहाँ पृथ्वी सितंबर में पहुँचती है। यह हमारे यहाँ की वर्षा ऋतु या वर्षा का अंत तथा शरद का आरंभ है। इस समय भी सारी पृथ्वी पर बड़ी ही मनोहर ऋतु होती है। २१ सितंबर को दिन और रात बराबर होते हैं। इस ऋतु में भी सूर्य्य भूमध्यरेखा के सामने होता है।

ऋतुपरिवर्त्तन की यह एक सरल व्याख्या है। इस परिवर्त्तन का प्रधान कारण पृथ्वी का परिभ्रमण है। इसके अतिरिक्त कुछ और गौण कारण भी हैं जिनका संबंध भौतिक-विज्ञान से है। यहाँ केवल प्रधान प्रधान ऋतुओं का वर्णन

किया गया है। एक ऋतु से दूसरी के बीच में जो जो क्रम प्राप्त परिवर्त्तन होंगे उनका समझना कठिन नहीं है।

पाठकों ने सुना होगा कि कहीं कहीं छः छः महीने तक दिन और रात होते हैं। यह बात हमारे चित्र से समझ में आ सकती है। जिस समय पृथ्वी पहले स्थान के लगभग होती है उत्तरी ध्रुव सूर्य्य से सदैव हटा रहता है। जो स्थान भूमध्यरेखा से जितना ही उत्तर होगा उसमें उतना ही प्रकाश कम देर तक पहुँचेगा, यहाँ तक कि उत्तरी ध्रुव पर प्रकाश का एक मात्र अभाव होगा और वहाँ लगभग छः महीने तक रात रहेगी। इसी समय दक्षिणी ध्रुव पर बराबर दिन रहेगा। परंतु जब पृथ्वी तीसरे स्थान पर पहुँचेगी तो जो स्थान भूमध्यरेखा से जितना ही उत्तर होगा उसमें उतना ही प्रकाश अधिक देर तक पहुँचेगा, यहाँ तक कि उत्तरी ध्रुव पर छः महीने के लगभग दिन रहेगा। इसी समय दक्षिणी ध्रुव पर बराबर रात रहेगी।

पृथ्वी की इस गति का प्रभाव चंद्रमा के प्रकाश पर भी पड़ता है। यह तो बहुत लोगों का अनुभव होगा कि सर्दी के दिनों में गर्मी की ऋतु की अपेक्षा चंद्रमा में प्रकाश अधिक होता है। इसका प्रधान कारण पृथ्वी की गति है। यह तो सब को विदित है कि चंद्रमा सूर्य्य के प्रकाश से ही चमकता है। अत; शुक्ल पक्ष में चंद्रमा सूर्य्य के ठीक सामने होता है, जैसा कि नीचे के चित्र से प्रतीत होता है।

अब जैसा कि ऋतुओं के संबंध में कहा जा चुका है सर्दी के दिनों में सूर्य्य पृथ्वी से निकट और दक्षिणायन
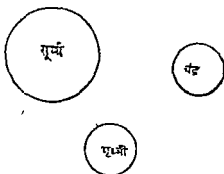
होता है, (ये बातें पृथ्वी के उत्तरी भाग के लिये हैं जिसमें हम लोग हैं) इसलिये शुक्ल पक्ष में चंद्रमा सूर्य्य से उलटी दिशा में अर्थात् उत्तर की ओर होता है, एवं हमको उससे प्रकाश अधिक मिलता है। किंतु गर्मी में सूर्य्य पृथ्वी से दूर और उत्तरायण होता है अतः चंद्रमा दाक्षिणायन होता है। इसलिये हम को उससे प्रकाश कम मिलता है। इसका रंग भी पूर्ण स्वच्छ नहीं होता, नीचे के चित्र से यह बात स्पष्टतया समझ में आ जाती है। (जून)
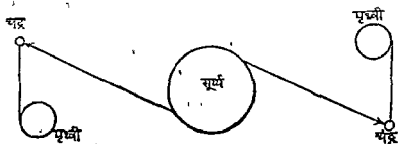
(दिसंबर)

तीरों के द्वारा प्रकाश की किरणों का मार्ग बतलाया गया है।

पृथ्वी की गति के संबध में केवल एक बात और ध्यान रखने योग्य है। जो चित्र ऋतुओं के संबध मे दिया गया है उससे यह प्रगट होता है कि पृथ्वी का अक्ष सदा एक ही ओर को झुका रहता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यदि वह अपना झुकाव परिवर्तन कर दे तो उसमें और क्रांतिवृत्त में जो ६७ अंश का कोण है वह परिवर्तित हो जाय और ऋतुओं का क्रम विगड़ जाय। इस कल्पित अक्ष के उत्तरी सिरे के ठीक सामने जो तारा है उसे ध्रुवतारा कहते हैं, क्योंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर इसी अक्ष पर घूमती है। इसीसे ऐसा प्रतीत होता है कि ध्रुव तारा आकाश में निश्चल है और अन्य सब तारे पूर्व से पश्चिम की ओर उसकी परिक्रमा करते हैं।

परंतु यह न समझना चाहिए कि अक्ष अपनी दिशा को कभी परिवर्त्तित करता ही नहीं। वैज्ञानिकों का यह सिद्धांत है कि धीरे धीरे अक्ष अपनी दिशा को बदल रहा है। जो कोण पहले उसमें और क्रांतिवृत्त में बनता था अब नहीं है और कुछ काल में यह कोण भी न रहेगा। परंतु इस शनैः शनैः परिवर्तन का फल सहस्रों वर्ष में देख पड़ता है। कुछ ज्योतिषियों ने गणित द्वारा यह निश्चय किया है कि पृथ्वी का अक्ष स्वय एक छोटा सा गोला बना रहा है और २५००० वर्ष के पीछे अपने स्थान पर फिर आ जाया करता है। उस का इस प्रकार का घूमना नीचे दिए हुए चित्र से देख पड़ता है। नीचे

की रेखा पृथ्वी की क्रांति रेखा है और १,२,३,४ अक्ष की भिन्न भिन्न समय की दिशा-सूचक रेखाएँ हैं। अक्ष के घूमने से १ २ ३ ४ गोलवृत्त बन गया है।
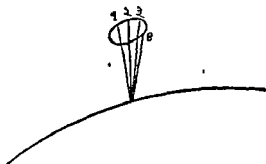
ऊपर पृथ्वी की दोनों युगपद् (एक साथ होनेवाली) गतियों के संबंध में जो कुछ कहा गया है वह संभवतः कुछ कठिन सा प्रतीत होगा, परंतु थोड़े से परिश्रम से एक लंप और गेंद की सहायता से यह समझ में आ सकता है।

---

(३) चंद्रमा ।

पृथ्वी के पीछे चंद्रमा का स्थान है। यद्यपि घन-फल में यह पिंड पृथ्वी से भी छोटा है परंतु हम पृथ्वी-वासियों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल से ही सभ्य और असभ्य सभी प्रकार के लोगों ने अपनी अपनी अभिरुचि और बुद्धि के अनुसार इसका निरीक्षण किया है। छोटे से बालक का चित्त भी इसकी ओर उसी प्रकार खिंचता है जिस प्रकार कि वयप्राप्त पुरुषों का। कविसंप्रदाय के लिये तो चद्रमा के बिना सारा ब्रह्मांड ही शुष्क और नीरस है। इतना ही नहीं, पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसके अतुल सौंदर्य्य पर मुग्ध हो जाते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी (Flammarion) फ्लैमेरियन् इसकी प्रशंसा करते हुए रसपूर्ण शब्दों में कहते हैं—"The full moon rises slowly, as it were, calling our thoughts towards the mysteries of eternity, while her lamp light spreads over space like a dew from heaven" अर्थात् पूर्णचद्र का उदय शनैः शनैः इस प्रकार होता है मानों वह हमारे विचारों को नित्यता (परातत्व) के रहस्यों की ओर आकर्षित कर रहा हो और उसका शीतल प्रकाश आकाश में स्वर्ग-च्युत तुषार के समान फैल जाता है।

परंतु चंद्रमा हमारे लिये मनोहारि होने के अतिरिक्त उपयोगी भी है। वह उपग्रह है। उपग्रह उस पिंड को कहते हैं जो किसी पिंड की परिक्रमा किया करता हो। जिस प्रकार

पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है उसी प्रकार चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। इस घूमने में उसे एक महीने के लग भग लगता है। जिस प्रकार हमने सूर्य्य से दिन और वर्ष पाया है उसी प्रकार चंद्रमा ने हमको मास और पक्ष दिया है। जिस प्रकार पृथ्वी या सूर्य्य का मार्ग बारह राशियों में विभक्त कर दिया गया है उसी प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करने का जो चंद्रमा का मार्ग है वह २७ नक्षत्रों में विभक्त कर दिया गया है। राशियों की भाँति नक्षत्र भी तारों के समूह या अकेले तारे हैं। नक्षत्रों के नाम ये हैं—

अश्विनी	पुनर्वसु	हस्त	मूल	शततारका
भरणी	पुष्य	चित्रा	पूर्वाषाढ़	पूर्वभाद्रपद
कृत्तिका	आश्लेषा	स्वाति	उत्तराषाढ़	उत्तरभाद्रपद
रोहिणी	मघा	विशाखा	अभिजित्	रेवती
मृगशिरा	पूर्वफाल्गुनी	अनुराधा	श्रवण	
आर्द्रा	उत्तरफाल्गुनी	ज्येष्ठा	धनिष्ठा	

वस्तुतः नक्षत्र शब्द का अर्थ तारा है और यह शब्द प्रायः अकेले तारों के लिये ही आता है।

इस प्रकार की बारह परिक्रमाओं में चंद्रमा को लगभग ३५५ दिन लगते हैं, अर्थात् चंद्रमा के बारह मासों का साल सौर वर्ष (वह ३६५ दिन का वर्ष जिसमें पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है) से १० दिन के लगभग छोटा होता है। तीन वर्षों में इस प्रकार (३×१०) ३०, दिनों का अंतर पड़ जाता है, इसी लिये हिंदू ज्योतिषी प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिक मास जोड़ कर सौर और चांद्र वर्षों को बराबर कर

लेते हैं। मुसलमान ज्योतिषियों के यहाँ इस प्रकार का कोई प्रबंध नहीं है। इसलिये उनके यहाँ बड़ा गोलमाल होता है। उनके तेहवार कभी जाड़े, कभी गर्मी और कभी वर्षा में पड़ा करते हैं। बंगाली और अंगरेजी ज्योतिषी चंद्रमा से मास नहीं जोड़ते प्रत्युत सौर वर्ष के १२ टुकड़े सुभीते के अनुसार कर लेते हैं, इसलिये उनके यहां इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

जब हम शुक्ल पक्ष में चंद्रमा की ओर देखते हैं तो उस मे दो प्रकार की गति प्रतीत होती है। एक तो वह पूर्व से पश्चिम की ओर चलता प्रतीत होता है। जिस रात को देखिए, चंद्रमा सवेरे तक पश्चिम में डूब जाता है। यह गति कृत्रिम है। इसका कारण, जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, पृथिवी का पश्चिम से पूर्व की ओर अक्षभ्रमण है।

दूसरी गति पश्चिम से पूर्व की ओर है। चंद्रमा नित्य एक ही स्थान पर नहीं निकलता। जहाँ एक दिन चंद्रोदय होता है दूसरे दिन उससे कुछ पूर्व की ओर हट कर चंद्रोदय होता है। कृष्ण पक्ष की समाप्ति पर प्रतिपद् के दिन सूर्य्यास्त के समय अस्ताचल के निकट ठीक पश्चिम में चंद्रोदय होता है, परंतु हटते हटते पक्ष के अंत में पूर्णिमा के दिन पूर्व में चंद्रमा निकलता है। चंद्रमा की यह गति वास्तविक है। चद्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और पश्चिम से पूर्व की ओर पृथ्वी की परिक्रमा करता है।

चंद्रोदयस्थान में परिवर्तन के साथ साथ एक और परिवर्तन भी होता है। चंद्रमा का स्वरूप भी एक सा नहीं रहता है। प्रतिपद् से पूर्णिमा तक उसमें प्रति रात्रि परिवर्तन होता

रहता है। पहले पहल वह एक चाप सा दीखता है और फिर क्रमशः पूर्ण बिंब हो जाता है। इस बात का भी कारण समझना कठिन नहीं है। चंद्रमा स्वयं प्रकाशमान् पिंड नहीं है। वह भी पृथ्वी की भांति सूर्य्य से ही प्रकाश पाता है। जिस समय वह घूमता घूमता पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में आ जाता है उस समय हम उसको नहीं देख सकते, क्योंकि उसका जो भाग सूर्य्य के सामने है वह हमसे छिपा हुआ है। यह हमारा कृष्ण पक्ष है। जिस समय वह ऐसे स्थान में पड़ जाता है कि उसके और सूर्य के बीच में पृथ्वी आ जाती है तो वह हमको देख पड़ता है। यह हमारा शुक्ल पक्ष है। नीचे दो चित्र दिए गए हैं। पहला अमावस्या की रात्रि का है, जब कि चंद्रमा पूर्णतया अदृश्य रहता है और दूसरा पूर्णिमा की रात्रि का जब कि पूर्ण चंद्र देख पड़ता है।)

पहले चित्र में चंद्र का अँधेरा भाग पृथ्वी के सामने है और दूसरे चित्र में उँजेला। पहले अमावस्या के दिन से चलिए। ज्यों ही चंद्रमा अपने स्थान से थोड़ा सा भी चलेगा उसके उँजेले भाग का एक टुकड़ा पृथ्वी से देख पड़ने लगेगा, ज्यों ज्यों वह घूमता जायगा इस उँजाले भाग की मात्रा बढ़ती जायगी

पृ
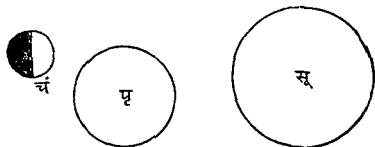
यहाँ तक कि एक पक्ष में ऊपर दिए हुए चित्र की अवस्था हो जायगी। परंतु अब फिर ज्यों ज्यों चंद्रमा हटेगा उँजेले भाग का अंश जो पृथ्वी से देख पड़ सकता है कम होने लगेगा यहाँ तक कि क्रमशः फिर २५ वें पृष्ठ पर दिए हुए चित्र की सी अवस्था हो जायगी।

परंतु हम सदैव चंद्रमा का आधा ही भाग देखते हैं। चंद्रमा भी पृथ्वी की भांति अपनी अक्ष पर घूमता है परंतु उस को इस अक्ष-भ्रमण में उतना ही समय लगता है जितना पृथ्वी की परिक्रमा में। दोनों काम एक मास में समाप्त होते हैं। इसीलिये हमारे सामने बार बार वही भाग आता है। हाँ, कभी कभी प्रगति-भेद के कारण दूसरे भाग की एक हल्की सी झलक मिल जाती है।

चंद्रमा के पृथ्वी के चारों ओर घूमने के कारण ही ग्रहण लगा करते हैं। कभी कभी चंद्रमा घूमते घूमते पृथ्वी और सूर्य्य के बीच में इस प्रकार आ जाता है कि सूर्य्य से पृथ्वी तक प्रकाश आ ही नहीं सकता। उस समय सूर्य्य-ग्रहण

लगता है। सूर्य्य ग्रहण तीन प्रकार का हो सकता है, या तो संपूर्ण सूर्य्य छिप जाय, या उसका कुछ अंश कट जाय, या सूर्य्य बिंब के बीच में चंद्र बिंब आ जाय, जैसा कि इस चित्र में है।
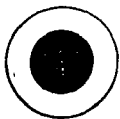
इनको क्रमात् पूर्णग्रहण, खंडग्रहण और वलय ग्रहण कहते हैं। जैसा कि २५ वें पृष्ठ के चित्र से प्रगट है सूर्य्यग्रहण का लगना अमावास्या को ही संभव है।

जब कभी घूमता घूमता चंद्रमा इस प्रकार पड़ जाता है कि पृथ्वी उसके और सूर्य्य के बीच में आ जाती है तो चंद्रमा पर सूर्य्य का प्रकाश न पड़ने से वह अदृश्य हो जाता है। इसे चंद्रग्रहण कहते हैं। चंद्रग्रहण या तो पूर्ण होता है या खंड, किंतु वलय नहीं हो सकता क्योंकि पृथ्वी का बिंब चंद्र बिंब से बड़ा है और उसके भीतर आ नहीं सकता। २६ वें पृष्ठ के चित्र से यह बात प्रगट है कि चंद्रग्रहण पूर्णिमा के ही दिन लग सकता है।

चंद्रमा के कारण पृथ्वी पर एक और अत्यंत महत्वपूर्ण दृग्विषय संघटित होता है जिसको 'ज्वारभाटा' कहते हैं। परंतु इसको समझने के पहले हमें आकर्षण सिद्धांत समझ लेना चाहिए। इसका विवरण मैंने 'भौतिक-विज्ञान'* में किंचित विस्तार से किया है। इस सिद्धांत की व्याख्या

---

* यह इस पुस्तक माला की १० वीं पुस्तक है।

पहले सर आइज़क न्यूटन ने की थी। इसका सारांश यह है कि इस विश्व में प्रत्येक पिंड प्रत्येक इतर पिंड को अपनी ओर खींच रहा है। यह खिंचाव दो बातों पर निर्भर है। दो पिंडों के द्रव्यमानों का गुणनफल जितना ही अधिक होगा उनमें खिंचाव का बल उतना ही अधिक होगा। मान लीजिए कि दो पिंड हैं जिनका द्रव्यमान ३ और ४ है। इन द्रव्यमानों का गुणनफल १२ हुआ। यदि दो और पिंड हों जिनके द्रव्यमानों का गुणनफल इसी प्रकार ४८ हो तो ये दोनों एक दूसरे को पहलेवालों की अपेक्षा चौगुने बल से खींचेंगे। यह खिंचाव द्रव्यमान के साथ साथ दूरी पर भी निर्भर है। वह दूरी के वर्ग के उत्क्रम के अनुसार होता है। जैसे तिगुनी दूरी पर बल $\frac{1}{3 \times 3}$ अर्थात् $\frac{1}{9}$, चौगुनी दूरी पर $\frac{1}{4 \times 4}$ अर्थात् $\frac{1}{16}$ रह जाता है, इत्यादि।

साधारणतः ऐसा प्रतीत होता है कि बड़ी वस्तु छोटी को खींच लेती है। बात यह है कि दोनों एक दूसरे को खींचती हैं, परंतु जिसमें द्रव्यमान कम होता है वह बीच के अवकाश के अधिकांश को तै करके बड़ी द्रव्यमान वाली से मिल जाती है और बड़ी का चलना प्रतीत नहीं होता। तरल और वाष्पीय पदार्थों पर ठोस पदार्थों की अपेक्षा फल शीघ्र देख पड़ता है और बीच में जितनी ही रुकावट और रगड़ कम होती है यह शक्ति अधिक काम कर सकती है।

इन बातों पर ध्यान रखते हुए हम 'ज्वारभाटा' का होना समझ सकते हैं। अमावास्या और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य पृथ्वी और चंद्रमा ये तीनों एक ही सीध में होते हैं। चंद्रमा

यद्यपि छोटा है परंतु निकट होने के कारण वह अधिक बल लगाता है और उसके खिंचाव के कारण समुद्र का पानी ऊपर की ओर उठता है। जिस ओर चंद्रमा होता है उधर से एक लहर पश्चिम की ओर जाती है क्योंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर जा रही है। एक और प्रकार का ज्वारभाटा दोनों पक्षों में सप्तमी या अष्टमी के लगभग देख पड़ता है जब कि सूर्य और चंद्रमा की स्थिति इस चित्र के अनुसार होती है।
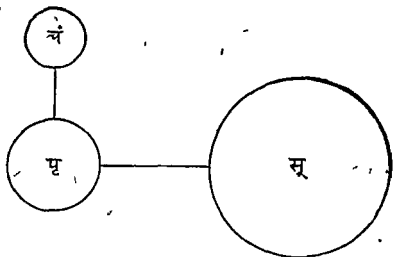
तरल होने के कारण जल पर इस शक्ति का प्रभाव विशेष रूप से देख पड़ता है।

यहां पर ज्वारभाटे का बहुत विस्तार से इसलिये वर्णन नहीं किया गया कि हममें से अधिकांश उससे एक मात्र अपरिचित हैं। कितनों ने समुद्र कभी देखा ही नहीं है। जिन

लोगों को इसका अनुभव है उनका यह कथन है कि पृथ्वी पर कदाचित् ही कोई दृश्य ऐसा मनोहारि और गांभीर्योत्पादक होता होगा। कहीं कहीं बड़ी नदियों के मुहाने के पास समुद्र का जल इतने वेग से उठता है कि नदी में बहुत दूर तक प्रवाह को उलट कर ऊपर चढ़ जाता है।

हम ऊपर कई स्थलों में कह आए हैं कि चंद्रमा पृथ्वी से छोटा है और पृथ्वी के अत्यंत निकट है। यहाँ पर यह बतला देना उचित है कि उसका व्यास लगभग २२०० मील या ११०० कोस के है और वह पृथ्वी से २३८००० मील या ११९००० कोस दूर है। इन दूरियों के नापने की रीति *त्रिकोणमिति की पुस्तकों में रहती है। यहाँ विस्तारभय* से यह नहीं लिखी गई।

अभी तक हमने केवल उन बातों का वर्णन किया है जिनका चंद्रमा के साथ साथ पृथ्वी से भी संबंध है। परंतु चंद्रमा संबंधी बहुत सी स्वतंत्र बातों का भी पता वैज्ञानिकों ने लगाया है। खवर्ती पिंडों में चंद्रमा हमसे निकटतम है और पंद्रह दिन से भी अधिक हम उसे अच्छी भांति देख सकते हैं। इसलिये हमारा उसके संबंध में बहुत सी बातों का जान लेना स्वाभाविक है।

चंद्रमा की ओर देखने से हमारी दृष्टि पहले उसके काले धब्बों पर पड़ती है। ये धब्बे क्या हैं ? हम में से बहुतों ने वृद्धा स्त्रियों के मुख से सुना होगा कि चंद्रमा में एक स्त्री बैठी चर्खा कात रही है। कालिदास ने चंद्रमा के प्रकाश से मुग्ध होकर धब्बों को विस्मृत ही कर दिया 'एको हि दोषो

गुण संनिपाते निमज्यतींद्रोः किरणेष्विवांकः'।' कोई इनको चंद्रदेव के दुष्कर्मों का ज्ञापक बतलाता है, परंतु विज्ञान इस प्रश्न का और ही उत्तर देता है। उसका कथन है कि चंद्रमा पर जो बड़े बड़े काले काले धब्बे देख पड़ते हैं वे बृहत्काय पर्वत हैं। उनमें से बहुतों की ऊँचाई नापी गई है। वे हिमालय की चोटियों की बराबरी करते हैं। उन में से दो पर्वत डोर्फेल और लाइब्निट्ज २५२६४ फुट ऊँचे हैं। यह ऊँचाई चंद्रमा से छोटे पिंड के लिये पर्याप्त से कहीं अधिक है। इन पहाड़ों में से अधिकांश ज्वालामुखी हैं परंतु अब इनमें से अग्नि नहीं निकलती, केवल आकार मात्र रह गया है। इन पहाड़ों के बीच में तराइयाँ और सैकड़ों कोस लंबे मैदान पड़े हैं। संभव है कि किसी समय यहां समुद्र रहे हों। ज्योतिषियों ने इनको 'शांतिसागर' 'निश्चल सागर' आदि कल्पित नाम भी दे रक्खे हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं सैकड़ों कोस तक लंबी दरारें पड़ी हुई हैं, जो किसी किसी स्थल में चार चार सौ गज़ गहरी और एक कोस से भी अधिक चौड़ी हैं।

चंद्रमा पर जल और वायु दोनों का अभाव है। संभव है कि पहाड़ों के तल के पास ये दोनों पदार्थ अति क्षीण रूप से हों पर वहां भी किसी जीव का पाया जाना असंभव है। अधिक से अधिक वहां उस प्रकार की हरियाली रह सकती है जिसे हम काई कहते हैं और जो सड़ती हुई लकड़ी पर या गँदले पानी में लग जाया करती है।

चंद्रमा वस्तुतः एक मृत जगत् है। यह संभव ही नहीं किंतु निश्चितप्राय है कि किसी समय हमारी पृथ्वी की

भांति उस पर भी वृक्ष, पशु, पक्षी, आदि रहे होंगे। किसी प्रकार के मनुष्य-तुल्य प्राणियों का होना भी असंभव नहीं है। पर अब वे दिन गए। अब चंद्रमा शुष्क और वायुहीन है। अब उस पर जीव रह नहीं सकते। कम से कम जैसे जीवों से हम इस पृथ्वी पर परिचित हैं वैसे जीवों का वहाँ होना असभव है। संभवतः ऐसी ही गति एक दिन हमारी पृथ्वी की भी होगी। इस बात का विचार आगे चल कर किया जायगा।

पृथ्वी का वायुमंडल सूर्य्य की किरणों को इस प्रकार छिटका देता है कि दिन को तारे नहीं दीखते, पर चंद्रमा पर वायु के अभाव से, दिन को भी तारे देख पड़ते होंगे और सूर्य्य भी अधिक तेजोमय प्रतीत होता होगा। जिस प्रकार हम चंद्रमा को देखते हैं उसी प्रकार चंद्रमा पर से पृथ्वी भी एक बहुत बड़े चंद्रमा के समान देख पड़ती होगी। जिस प्रकार चंद्रमा का स्वरूप बदलता रहता है उसी प्रकार पृथ्वी का वहाँ से बदलता प्रतीत होता होगा और पृथ्वी भी आकाश में चलती प्रतीत होती होगी। जिस प्रकार पृथ्वी की गति के कारण सूर्य राशियों में चलता जान पड़ता है उसी भांति चद्रगति के कारण पृथ्वी चंद्रमा पर से नक्षत्रों मे घूमती हुई देख पड़ती होगी। चंद्रमा पर पृथ्वी ग्रहण लगते होंगे। स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार चंद्रमा से सूर्य्य का प्रकाश परावृत्त होकर पृथ्वी पर पड़ता है उसी प्रकार प्रकाश पृथ्वी से परावृत्त होकर चद्रमा पर पड़ता है। कभी कभी जब कृष्णपक्ष में या शुक्लपक्ष में चंद्रमा का एक टुकड़ा धन्वाकार देख

पड़ता है तो शेष भाग भी अत्यंत धुँधले रंग का देख पड़ता है। इस धुँधले भाग पर सूर्य का प्रकाश सीधा नहीं पड़ता परंतु पृथ्वी से होकर पड़ता है और यह इसी पार्थिवप्रकाश (Earth shine) से चमकता है। चंद्रमा को अपने अक्ष-भ्रमण में लगभग एक महीना लगता है। इसलिये वहाँ एक महीने का दिन रात होता होगा, एक पक्ष का दिन और एक पक्ष की रात। जल, वायु, बादल आदि के अभाव से दिन और रात दोनों हमारे दिन और रात से विलक्षण होते होंगे। दिन में अत्यंत भीषण गर्मी और रात्रि में महा विकराल सर्दी पड़ती होगी, जिसका कि हम स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकते।

पृथ्वी की गति समझ लेने के उपरांत चंद्रमा की गति समझने में कोई विशेष कठिनाई न पड़नी चाहिए। यदि हो भी तो, पहले की भाँति एक लंप और दो गेंदों (जिनमें से एक बड़ा और पृथ्वी के स्थान में हो और दूसरा उससे छोटा चंद्रमा के स्थान में हो) की सहायता से ये बातें बड़ी सुगमता से समझ में आ सकती हैं। पहाड़ों को स्पष्ट रूप से देखना बिना दूरदर्शक यंत्र के नहीं हो सकता किंतु बहुत ही साधारण और कम दामों के यंत्र भी बहुत सी बातों को स्पष्ट कर देते हैं। नक्षत्रों को देखने के लिये किसी प्राचीन प्रणाली के ज्योतिषी से सहायता लेनी चाहिए जो इनको पहचानता हो। इनके लिये यंत्र की आवश्यकता नहीं है। अंग्रेजी ज्योतिष में इनसे काम नहीं लिया जाता इसलिये इनके अलग नक्शे नहीं बनते।

---

(४) सूर्य्य ।

इस पृथ्वी के निवासियों के लिये सूर्य्य का जो कुछ महत्त्व है वह सब पर प्रगट है। दिन में सूर्य्य से ही हम को प्रकाश मिलता है और रात में भी सूर्य्य से ही प्रकाश ले कर चंद्रमा हम को देता है। ऊषःकाल और सायंकाल का अनुपम सौंदर्य्य सूर्य्य पर ही निर्भर है। सूर्य्य के ही तेज से समुद्रों के जल से बादल बनते हैं जिन पर हमारी कृषि और फलतः हमारा जीवन निर्भर है। सूर्य्य के ही प्रकाश और ताप से हम को ऋतुपरिवर्त्तन का अनुभव होता है। पृथ्वी पर जो कुछ चुंबकीय और विद्युत् की शक्ति है उसका भी संबंध सूर्य्य ही से है। जड़ पदार्थों पर ही नहीं, जीवधारियों पर भी सूर्य्य का विचित्र प्रभाव पड़ता है। यदि कुछ दिनों के लिये निरंतर बादल सूर्य्य को ढाँक लेते हैं तो पशु, पक्षी, एवं मनुष्य घबरा उठते हैं और मलिन-चित्त हो जाते हैं। सूर्य्य की किरणों में रोगों के दूर करने की भी शक्ति है। यह बात सदैव स्मरणीय है कि सूर्य्य हमारा सर्वस्व है— हमारा भरण, पोषण और सर्जनोत्सर्जन एक वृहदंश में सूर्य्य पर निर्भर है। जैसा कि प्रसिद्ध ज्योतिषी शियापेरेली (Schiparelli) ने कहा है, पृथ्वीवासियों के लिये सूर्य्य (the most magnificent work of the Almighty) परमात्मा की सर्व श्रेष्ठ कृति है।

सूर्य्य एक तारा है। वह जहाँ तक हम को ज्ञात है

स्वयं किसी पिंड विशेष की परिक्रमा नहीं करता। उसके साथ उसका परिभ्रमण करनेवाले अनेक ग्रहादि पिंड हैं, जिनका कथन आगे होगा। ये सब स्वयं प्रकाश-शून्य हैं। सूर्य्य ही इन को प्रकाश देता है और सूर्य्य के ही ताप से इनको उष्णता मिलती है। परंतु सूर्य्य ताप और प्रकाश के लिये किसी दूसरे का आश्रित नहीं है।

सूर्य्य के संबंध में जितनी बातें हैं सभी आश्चर्य्यजनक हैं। ज्योतिषियों ने पता लगाया है कि कई तारे जो दूरी के कारण छोटे बिंदु के सदृश प्रतीत होते हैं सूर्य्य से कहीं बड़े और अधिक प्रकाशवाले हैं। परंतु मनुष्य की तुच्छ बुद्धि सूर्य्य के सामने ही घबरा जाती है।

पहले सूर्य्य की दूरी को लीजिए। सूर्य्य हम से ९३,०००,००० मील या ४६५००,००० (चार करोड़ पैंसठ लाख) कोस दूर है। यह एक ऐसी संख्या है जिस को लिख देना या कह देना तो सुगम है परंतु ठीक ठीक बुद्धिगत करना कठिन है। इसका बोध कई ज्योतिषियों ने कई प्रकार से कराने का प्रयत्न किया है।

१. वैज्ञानिकों ने कई युक्तियों से यह निश्चित किया है कि प्रकाश की गति प्रति सेकंड ९३००० कोस है। (मेरा 'भौतिक विज्ञान' पृ० ८३-८६ देखिए) इससे सूर्य्य की दूरी के भाग देने से लब्धि में ८⅓ मिनट आते हैं। अर्थात् सूर्य्य इतनी दूर है कि प्रति सेकंड ९३००० (तिरानबे सहस्र) कोस के भीषण वेग से चलते हुए भी प्रकाश को सूर्य्य से पृथ्वी तक आने में ८⅓ मिनट लगते हैं।

२. सर राबर्ट बाल (Sir Robert Ball) ने इस दूरी को यों समझाया है। घड़ी प्रत्येक मिनट में ६० बार 'टिक' शब्द करती है अर्थात् एक दिन और रात में वह ६०×६०×२४ या ८६४०० टिक करती है। यदि कोई घड़ी बराबर ५३८ दिन वा लगभग १½ (डेढ़) वर्ष तक बराबर चलती रहे तो वह ४६५००,००० टिक करेगी (अर्थात् उतने टिक जितने कोस कि सूर्य्य की दूरी है)

३. हमारे यहाँ पंजाब मेल की गाड़ी प्रायः एक घंटे में ४० मील या २० कोस चलती है, यदि कोई गाड़ी पृथ्वी से सूर्य्य तक इसी वेग से बिना, कहीं रुके हुए रात दिन चली जाय तो उसको वहाँ पहुँचने में २६५ वर्ष लगेंगे।

सूर्य्य की दूरी के समान उसका आकार भी अद्भुत है। उसका व्यास ८६६००० मील या ४३३००० कोस, अर्थात् पृथ्वी के व्यास का १०८ गुणा है। उसकी बड़ाई समझने के लिये उसके घनफल को लेना चाहिए।

(किसी गोल पिंड का घनफल निकालने के लिये उसके व्यासार्द्ध के घन को $\frac{४}{३}\times\frac{२२}{७}$ से गुणा करते हैं। इस प्रकार सूर्य्य का घनफल $\frac{४}{३}\times\frac{२२}{७}\times\frac{४३३०००}{२}\times\frac{४३३०००}{२}\times\frac{४३३०००}{२}$ घन कोस और पृथ्वी का घनफल $\frac{४}{३}\times\frac{२२}{७}\times २०००\times २०००\times$ २००० घन कोस हुआ। इस हिसाब से सूर्य्य पृथ्वी से $\frac{४३३\times ४३३\times ४३३}{६४}$ गुणा बड़ा हुआ।)

जितना स्थान अकेले सूर्य्य ने घेर रक्खा है उतने में १२५०००० पृथ्वी के बराबर पिंड आ जाँयगे।

इस बड़े परिणाम को समझने के लिये अध्यापक मेगरी ने यह उदाहरण दिया है—"मान लो कि हम से यह कहा जाय कि सूर्य्य के बराबर एक पिंड निर्माण करो, और हम प्रति घंटे पृथ्वी के बराबर एक पिंड एकत्र कर सकते हैं, तो संपूर्ण पिंड १५० वर्ष में बन जायगा।

परंतु सूर्य्य जितना बड़ा है उतना भारी नहीं है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व पृथ्वी का ¼ है। इसका अर्थ यह है कि हम यदि एक टुकड़ा पृथ्वी का और उतना ही बड़ा एक टुकड़ा सूर्य्य का लें तो पृथ्वी का टुकड़ा तौल में सूर्य्य के टुकड़े का चौगुना होगा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सूर्य्य पृथ्वी से १२५०००० गुणा बड़ा है, इसलिये वह तौल में पृथ्वी का $\frac{१२५००००}{४}$ या लगभग ३२०००० गुणा हुआ। किसी ज्योतिषी के मत से सूर्य्य का तौल २,०००,०००,०००, ०००,०००,०००,०००, टन या ५६,०००,०००,०००,०००, ०००,०००,०००, मन है। सूर्य्य के इस आपेक्षिक हलकेपन का कारण यह है कि वह पृथ्वी के समान ठोस नहीं है।

सूर्य्य के गुरुत्वादि के उपरांत सूर्य्य के ताप को देखिए। जब ४६५००,००० कोस की दूरी पर सूर्य्य की गर्मी हम को विह्वल कर देती है तो सूर्य्य के तल पर उसकी क्या दशा होगी। हम ऐसी गर्मी की कल्पना भी नहीं कर सकते। किसी किसी का ऐसा अनुमान है कि यदि एक सेकंड में १० शंख से अधिक कोयले जला दिए जाँय तो जितनी गर्मी उनसे निकलेगी उतनी ही गर्मी सूर्य्य से प्रति सेकंड निकलती है। जब किसी को ज्वर आता है तो डाक्टर लोग थर्मामीटर

(थर्ममाट्) लगाते हैं। यदि ११० डिग्री से ऊपर गर्मी हो तो रोगी कदापि नहीं बच सकता। सूर्य्य के तल पर १५,००० से २०,००० डिग्री की गर्मी है।

इस स्थान पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतनी गर्मी सूर्य्य में कहाँ से आती है? आदि में यह गर्मी कहाँ से आई? इस का उत्तर पीछे दिया जायगा परंतु यदि गर्मी की वृद्धि न होती जाती तो संभव था कि सूर्य्य अब तक जल कर ठंढा हो जाता या कम से कम दिनों दिन ठंढा होता जाता। परंतु उसकी गर्मी में कोई ह्रास के चिह्न पाए नहीं जाते। गर्मी की वृद्धि के दो कारण बतलाए जाते हैं। एक तो यह कि, जैसा आगे बतलाया जायगा, बहुत से पुच्छल तारे और उल्कापिंड सूर्य्य के आकर्षण से खिंच कर उस पर गिरते रहते हैं और इनके धक्कों के कारण गर्मी उत्पन्न होती रहती है। दूसरा कारण यह है कि सूर्य्य धीरे धीरे सिकुड़ कर छोटा हो रहा है। सिकुड़ने से उसके भीतर रगड़ से गर्मी उत्पन्न होती है। जो कुछ हो, इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर देना कठिन है।

सूर्य्य का प्रकाश भी कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है। प्रकाश का नियम है कि ज्यों ज्यों उसे दूर चलना पड़ता है उसकी तीव्रता घटती जाती है। पृथ्वी पर, जो कि सूर्य्य से ४६५००,००० कोस दूर है, सूर्य्य के प्रकाश की तीव्रता को देख कर हम उसकी आदि तीव्रता का कुछ अनुमान कर सकते हैं। सौर प्रकाश की तीव्रता १९०००० मोमबत्तियों के बराबर है। किसी किसी ने ऐसा हिसाब लगाया है कि प्रति

क्षण सूर्य्य से १५७५,०००,०००,०००,०००,०००,००० बत्तियों के बराबर प्रकाश निकलता रहता है। ये ऐसी संख्याएँ हैं कि मनुष्य की बुद्धि इनके सामने चकरा जाती है।

अब सूर्य्य के तल की ओर आइए। खगोलवर्त्ती पिंडों में सूर्य्य चंद्रमा दो ही ऐसे पिंड हैं जो हम को अपना पृष्ठ दिखलाते हैं। परंतु इन दोनों में बड़ा अंतर है। चंद्रमा का प्रकाश शीतल है। उसमें कष्टदायी ताप नहीं है। उस पर देर तक आँख ठहर सकती है। सूर्य्य की दशा इसके ठीक उलटी है। उसका ताप असह्य है, उसका प्रकाश उत्कट है और उस पर आँख नहीं ठहरती। इसलिये दूरदर्शक यंत्र में भी काला शीशा लगाना पड़ता है। परंतु बहुत सी बातें ऐसी हैं जो बिना किसी यंत्र के ही देखी जा सकती हैं। केवल एक काँच का टुकड़ा चाहिए जो धुएँ से अच्छी तरह काला कर दिया गया हो। हाँ, धैर्य्य से अवश्य काम लेना होगा।

पहली वस्तु जो दो तीन दिनों के भीतर हम को देख पड़ेगी वह सूर्य्यलांछन है। यद्यपि पहले पहल यह बात सुनने में विचित्र सी प्रतीत होती है पर इसमें रत्ती भर संदेह नहीं कि सूर्य्य के पृष्ठ पर, जिसको कि हम निष्कलंकता का आदर्श समझते हैं, बहुत से काले काले धब्बे हैं। ये धब्बे किसी एक निश्चित आकार के नहीं हैं और न ये एक ही जगह हैं। ये सूर्य्य की मध्यरेखा के दोनों ओर अत्यंत उत्तर और दक्षिण के भाग को छोड़ कर पाए जाते हैं। इनके चारों ओर प्रचंड प्रकाश हो रहा है और बीच में ये घोर अंधकार के कूपों के सदृश प्रतीत होते हैं। इन घोर काले कूपों के चारों ओर एक

धुँधला भाग होता है। सन् १८९२ की फरवरी में एक धब्बा ९२००० मील लंबा और ६२००० मील चौड़ा पड़ा था, परंतु प्रायः धब्बे इस परिणाम तक नहीं पहुँचा करते।

इन लांछनों के संबंध में एक बड़ी विचित्र बात है। इनकी संख्या का घटना बढ़ना एक नियम के अनुसार होता है। प्रत्येक बारह वर्ष के पीछे फिर पूर्व सी अवस्था आती है। नीचे एक सारणी दी गई है जिसमें एक ओर वे सन् दिए हुए हैं जिनमें लांछनों की संख्या कम है और दूसरी ओर वे हैं जिनमें संख्या अधिक है। एक सन् से दूसरे में बराबर १२ वर्ष का अंतर है—

कम लांछन		अधिक लांछन	
लगभग सन्	१८८९	लगभग सन्	१८९३
"	१९०१	"	१९०५
"	१९१३	"	१९१७
"	१९२५	"	१९२९

वस्तुतः अंतर १२ वर्ष का नहीं प्रत्युत लगभग ११$\frac{1}{3}$ वर्ष का है।

इस क्रम का पता पहले पहल जर्मनी में श्वेब नामक एक साधारण औषधि बेचनेवाले अत्तार ने लगाया था। उसको लांछनों के गिनने का शौक था और बीस वर्ष के परिश्रम के उपरांत उसने यह नियम ढूँढ निकाला। जैसा कि उसने स्वयं कहा है उसकी दशा उस व्यक्ति की सी थी जो अपने पिता के खोए हुए गधों को ढूँढता हुआ अकस्मात् एक

राज्य पा जाय। (He set out looking for his father's asses and found a Kingdom.) इन लांछनों को देखने से एक और बात का पता लगता है। सूर्य्य भी पृथ्वी की भाँति अपनी अक्ष पर घूमता है। परंतु वह पृथ्वी के समान ठोस नहीं है इसलिये उसके सब भाग एक ही गति से नहीं घूमते। उसके मध्य भाग को एक अक्षभ्रमण में २५ दिन लगते हैं और उत्तरीय और दक्षिणी भागों को २७½ दिन। यों कहना चाहिए कि सूर्य्य का 'दिन रात' हमारे 'दिन रात' से पचीस गुणा से भी अधिक बड़ा होता है।

इन लांछनों का हमारी पृथ्वी पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस साल इनकी संख्या बढ़ जाती है उस साल पृथ्वी पर Magnetic storms या चुंबकीय क्षोभ होते हैं। जहाँ जहाँ चुंबक संबंधी सूक्ष्म यंत्र रक्खे होते हैं सब आप से आप ही क्षुब्ध हो जाते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उन पर कोई प्रचंड चुंबकीय शक्ति का प्रभाव पड़ रहा है। अनेक विद्युत् संबंधी दृग्विषय देख पड़ते हैं। जिन दिनों उत्तरी ध्रुव में रात्रि होती है उन दिनों वहाँ एक प्रकार का विद्युत् प्रकाश आकाश में देख पड़ता है। इसे ऑरोरा बोरियालिस कहते हैं। अधिक लांछन के सालों में यह प्रकाश अत्यंत उग्ररूप से देख पड़ता है। कुछ वैज्ञानिकों ने यह भी स्थिर किया है कि लांछनों का वर्षा से भी संबंध है। जिस साल अधिक लांछन देख पड़ते हैं उस साल वर्षा अधिक होती है। ऐसा होना असंभव नहीं है। कम से कम इस साल (१९१७) तो कदाचित् ऐसा ही हुआ है। यह अधिक लांछनों का भी साल है

और वर्षा भी इस साल स्यात् बहुत अच्छी हुई है।

सूर्य्य संबंधी कुछ बातें ऐसी हैं जो सूर्य्यग्रहण में ही भली भाँति देखी जा सकती हैं। सन् १८९८ में जब पूर्ण-ग्रहण लगा था तो दूर दूर से आ कर कई अंग्रेज सज्जनों ने उसे भारत से देखा था। बक्सर से ग्रहण बहुत ही अच्छी भाँति देख पड़ा था। भूयोदर्शन के उपरांत ज्योतिषियों ने सूर्य्य के सबंध में ये बातें निश्चित की हैं—

१. सूर्य्य का पहला आवरण [कोष या ऊपर से ढँकने-वाली वस्तु जैसे गिलाफ] वह है जो हमको नित्य देख पड़ता है। इसको प्रकाशमंडल (photosphere) कहते हैं। सूर्य्य के प्रकाश का मुख्य क्षेत्र यही है। यह अत्यंत गंभीर और निश्चल है, कम से कम स्वयं इसमें किसी प्रकार के क्षोभ का ठीक प्रमाण नहीं मिलता।

२. इसके ऊपर दो आवरण हैं। प्रत्यादर्शकस्तर (Reversing layer) और वर्णमंडल (Chromosphere)। इनमें वर्णमंडल अधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इसकी गहराई अधिक नहीं है, परंतु इसको अग्नि का समुद्र कहना चाहिए। यह सूर्य्य के ताप की खान है और समुद्र की भाँति सदैव रंगित रहता है। ऐसा ज्ञात होता है कि इसमें तप्त हाइड्रोजन गेस (वाष्प) है। जिस प्रकार अग्नि में से लपटें उठा करती हैं वसी प्रकार इसमें से भी दूर दूर तक लपटें उठती रहती हैं। इनको शिखर (prominences) कहते हैं। ये रक्त ज्योति के पहाड़ या बादल से प्रतीत होते हैं। सन् १८८५ में एक शिखर १४२००० मील या ७१००० कोस की

ऊँचाई तक पहुँच गया था। जब इतनी ऊँचाई तक पहुँच कर ये शिखर टूटते हैं उस समय विचित्र भैरव दृश्य होता है। 'ज्वाला व्याप्त दिगंतरम्' सा प्रतीत होता है; यहाँ दिगंतर शब्द से सूर्य्य के आस पास १००,००० कोस के घेरे के भीतर के दिग्भाग से तात्पर्य्य है।

३. इन सब के पीछे सूर्य्य का अंतिम आवरण प्रभामंडल (corona) है। (यद्यपि प्रभा शब्द का अर्थ प्रकाश भी है परंतु यहाँ पर हमने यह पारिभाषिक भेद कर लिया है कि 'प्रभा' शब्द को शीतल ज्योति और 'प्रकाश' शब्द को उग्र ज्योति के लिये प्रयुक्त करें।)

यह अत्यंत शांत, निश्चल और शीतल है। इसकी ज्योति चंद्रज्योति से मिलती है। यह मंडल सूर्य्य के चारों ओर लाखों कोस तक फैला हुआ है।

ये सूर्य्य के मुख्य आवरण है, पर सूर्य्य है क्या? वह क्या पदार्थ है जिसको इन आवरणों ने ढाँक रक्खा है? इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर देना कठिन है। जब लांछनों द्वारा प्रकाश-मंडल फट जाता है तो भीतर घोर अंधकार देख पड़ता है। क्या सूर्य्य भी पृथ्वी, चंद्रमा आदि की भाँति एक अँधेरा जगत् है जो ऊपर से प्रकाश और ताप-प्रद आवरणों से ढँका हुआ है? अभी तक इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला है।

एक यंत्र है जिसका नाम है रश्मि विश्लेषक (spectroscope)। इसका सविस्तर वर्णन यंत्रों के अध्याय में होगा। यहाँ इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि इसके द्वारा सूर्य्य में

भी लोहे, कार्बन (शुद्ध कोयला), तांबे, जस्ते, आदि का होना सिद्ध हुआ है।

सूर्य्य के आवरणों के संबंध में एक बात और स्मरणीय है। ये सब भी लांछनों की भाँति ग्यारह वर्षवाले क्रम से बद्ध हैं। ग्यारह ग्यारह वर्ष में शिखर भी अधिक उद्दीप्त होते हैं और प्रभामंडल भी अपना आकार परिवर्त्तित करता है।

यह सूर्य्य का अत्यल्प वर्णन है। सूर्य्य संबंधी जितनी बातें हैं सब ही आश्चर्य्यजनक, सब ही विशाल, सब ही बुद्धि को चकरानेवाली हैं। इन्हीं सब बातों को देख कर यदि हम सूर्य्य को प्राणों का भी प्राण कहें तो अत्युक्ति न होगी। सब ही प्राचीन धर्म्मों ने सूर्य्य को परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट अकृत्रिम प्रतिमा मान कर उसको ईश्वरोपासना का एक प्रधान साधन बतलाया है, जैसा कि प्रसिद्ध ज्योतिषी (Proctor) प्राक्टर ने कहा है—" If there is any object which men can properly take as an emblem of the power and goodness of Almighty God, it is the Sun." " यदि कोई वस्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर की शक्ति और मंगलमयता की मूर्ति (व्यंजक) मानी जा सकती है तो वह सूर्य्य है।"

---

(५) सौरचक्र।

हम पहले कह चुके हैं कि सूर्य्य तारा है। उसके चारों ओर अनेक पिंड घूमते रहते हैं। ये सब पिंड उससे ही प्रकाश और ताप पाते हैं और जहाँ तक हम को ज्ञात है उन सब पर सूर्य्य का वही प्रभाव पड़ता होगा जो हमारी पृथ्वी पर पड़ता है। सूर्य्य और उसके साथवाले पिंडों के समूह को सौरचक्र कहते हैं।

ये पिंड आकर्षण नियम के अनुसार सूर्य्य से संबद्ध हैं। यद्यपि किसी ग्रह और सूर्य्य के बीच में कोई दृश्य डोरी नहीं है तथापि आकर्षण शक्ति ही अदृश्य रूप से डोरी का काम कर रही है। यदि किसी क्षण यह शक्ति लोप हो जाय तो उसी क्षण ग्रह सूर्य्य की परिक्रमा छोड़ कर सीधा चल निकले और न जाने किधर को चला जाय। बच्चे कभी कभी छोटी सी कंकरी में डोरी बांध कर उँगली के चारों ओर घुमाते हैं। यदि घुमाते समय कोई फुर्ती के साथ कैंची से डोरी को काट दे तो कंकरी चक्कर खाना छोड़ कर सीधी चल निकलेगी। यदि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उसे नीचे न खींच लाती तो वह बराबर सीधी ही चली जाती।

वस्तुत: कोई पिंड तब ही चक्कर खाता है जब उस पर एक साथ दो शक्तियाँ काम कर रही हों। नीचे के चित्र को देखिए। 'पि' एक पिंड है जो दो दिशाओं से खींचा जा

भी लोहे, कार्बन (शुद्ध कोयला), ताबे, जस्ते, आदि का होना सिद्ध हुआ है।

सूर्य्य के आवरणों के संबंध में एक बात और स्मरणीय है। ये सब भी लांछनों की भाँति ग्यारह वर्षवाले क्रम से बद्ध हैं। ग्यारह ग्यारह वर्ष में शिखर भी अधिक उद्दीप्त होते हैं और प्रभामंडल भी अपना आकार परिवर्त्तित करता है।

यह सूर्य्य का अत्यल्प वर्णन है। सूर्य्य संबंधी जितनी बातें हैं सब ही आश्चर्य्यजनक, सब ही विशाल, सब ही बुद्धि को चकरानेवाली हैं। इन्हीं सब बातों को देख कर यदि हम सूर्य्य को प्राणों का भी प्राण कहें तो अत्युक्ति न होगी। सब ही प्राचीन धर्म्मों ने सूर्य्य को परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट अकृत्रिम प्रतिमा मान कर उसको ईश्वरोपासना का एक प्रधान साधन बतलाया है, जैसा कि प्रसिद्ध ज्योतिषी (Proctor) प्राक्टर ने कहा है—" If there is any object which men can properly take as an emblem of the power and goodness of Almighty God, it is the Sun " " यदि कोई वस्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर की शक्ति और मंगलमयता की मूर्ति (व्यजक) मानी जा सकती है तो वह सूर्य्य है।"

---

(५) सौरचक्र ।

हम पहले कह चुके हैं कि सूर्य्य तारा है । उसके चारों ओर अनेक पिंड घूमते रहते हैं । ये सब पिंड उससे ही प्रकाश और ताप पाते हैं और जहाँ तक हम को ज्ञात है उन सब पर सूर्य्य का वही प्रभाव पड़ता होगा जो हमारी पृथ्वी पर पड़ता है । सूर्य्य और उसके साथवाले पिंडों के समूह को सौरचक्र कहते हैं ।

ये पिंड आकर्षण नियम के अनुसार सूर्य्य से संबद्ध हैं । यद्यपि किसी ग्रह और सूर्य्य के बीच में कोई दृश्य डोरी नहीं है तथापि आकर्षण शक्ति ही अदृश्य रूप से डोरी का काम कर रही है । यदि किसी क्षण यह शक्ति लोप हो जाय तो उसी क्षण ग्रह सूर्य्य की परिक्रमा छोड़ कर सीधा चल निकले और न जाने किधर को चला जाय । बच्चे कभी कभी छोटी सी कंकरी में डोरी बांध कर उँगली के चारों ओर घुमाते हैं । यदि घुमाते समय कोई फुर्ती के साथ कैंची से डोरी को काट दे तो कंकरी चक्कर खाना छोड़ कर सीधी चल निकलेगी । यदि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उसे नीचे न खींच लाती तो वह बराबर सीधी ही चली जाती ।

वस्तुतः कोई पिंड तब ही चक्कर खाता है जब उस पर एक साथ दो शक्तियाँ काम कर रही हों । नीचे के चित्र को देखिए । 'पि' एक पिंड है जो दो दिशाओं से खींचा जा

भी लोहे, कार्बन (शुद्ध कोयला), तांबे, जस्ते, आदि का होना सिद्ध हुआ है।

सूर्य्य के आवरणों के संबंध में एक बात और स्मरणीय है। ये सब भी लांछनों की भाँति ग्यारह वर्षवाले क्रम से बद्ध हैं। ग्यारह ग्यारह वर्ष में शिखर भी अधिक उद्दीप्त होते हैं और प्रभामंडल भी अपना आकार परिवर्त्तित करता है।

यह सूर्य्य का अत्यल्प वर्णन है। सूर्य्य संबंधी जितनी बातें हैं सब ही आश्चर्य्यजनक, सब ही विशाल, सब ही बुद्धि को चकरानेवाली हैं। इन्हीं सब बातों को देख कर यदि हम सूर्य्य को प्राणों का भी प्राण कहें तो अत्युक्ति न होगी। सब ही प्राचीन धर्म्मों ने सूर्य्य को परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट अकृत्रिम प्रतिमा मान कर उसको इश्वरोपासना का एक प्रधान साधन बतलाया है, जैसा कि प्रसिद्ध ज्योतिषी (Proctor) प्राक्टर ने कहा है—" If there is any object which men can properly take as an emblem of the power and goodness of Almighty God, it is the Sun." " यदि कोई वस्तु सर्वशक्तिमान् ईश्वर की शक्ति और मंगलमयता की मूर्ति (व्यंजक) मानी जा सकती है तो वह सूर्य्य है।"

सूर्य्य
बुध
शुक्र
पृथ्वी
मंगल
अवान्तरग्रह
गुरु
शनि
यूरेनस
नेपच्यून
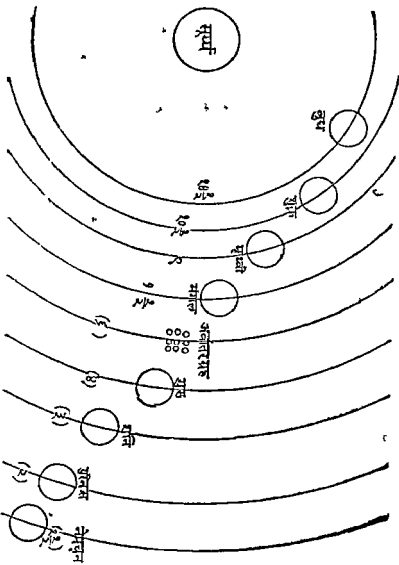
इसी नियम के अनुसार ग्रह चलते हैं। एक शक्ति तो उनको सीधे ले जाया चाहती है और दूसरी उनको सूर्य्य की ओर खींचती है। इसलिये विचारे दोनों के बीच में पड़ कर सूर्य्य की परिक्रमा किया करते हैं, और इसी नियम के अनुसार उपग्रह अपने अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं।

सूर्य्य के साथ आठ प्रधान ग्रह और एक छोटे छोटे ग्रहों का समूह है। इस समूह को एक ग्रह मान कर हम यह कह सक्ते हैं कि सब मिला कर सूर्य्य नवग्रहों का स्वामी है। ये ग्रह क्रम से एक दूसरे के पीछे आते हैं। ४७ वें पृष्ठ के चित्र में इनका क्रम दिया हुआ है।

प्रत्येक ग्रह के मार्ग पर कोष्ट में एक अंक दिया हुआ है यह अंक यह बतलाता है कि यह ग्रह एक सेकंड में कितने कोस चलता है। अवांतर ग्रहों के लिये एक संख्या न होने से औसत चाल दे दी गई है।

नीचे की सारणी मे ग्रहों की सूर्य्य से दूरी और उनका परिभ्रमण काल (अर्थात वह समय जिसमें वे सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी करते हैं) दिखलाया गया है। अंतिम घर मे प्रत्येक ग्रह का व्यास लिख दिया गया है।

इस सारणी को देखने से सौरचक्र के महत्व का कुछ अनुमान हो सकता है। इससे हमको सूर्य्य की उस संभ्रमोत्पादिनी शक्ति का भी कुछ कुछ बोध होता है जो इतनी अतर्क्य दूरियों पर इतने बड़े पिंडों को नियमानुसार परिचालित कर रही है।

ग्रह का नाम	सूर्य से दूरी	परिभ्रमण काल	व्यास
बुध	लगभग १ करोड़ ८१ लाख ५० सहस्र कोस	८८ दिन	लगभग १५१५ कोस
शुक्र	,, ३ करोड़ ३६ लाख १९ सहस्र कोस	२२५ दिन	,, ३८५० कोस
पृथ्वी	,, ४ करोड़ ६५ लाख कोस	३६५ दिन (१ वर्ष)	,, ४००० कोस
मंगल	,, ७ करोड़ ५ लाख कोस	६८७दिन(लगभग२वर्ष)	,, २११५ कोस
अवांतर ग्रह	,, १४ करोड़ कोस ?	२२०० दिन (,,६वर्ष)?	,,[3]५कोस से२५०कोस
वृहस्पति	,, २४ करोड़ १० लाख कोस	४३३२ दिन (,,१२वर्ष)	,, ४६०८२ कोस
शनि	,, ४४ करोड़ १७ लाख ५० सहस्र कोस	१०७५९ दिन(,,३०वर्ष)	,, ३७००० कोस
युरेनस	,, १ अरब ३७ करोड़ १७ लाख ५० सहस्र कोस	३०६८७ दिन(,,८४वर्ष)	,, १५५०० कोस
नेपच्यून	,, १ अरब ३९ करोड़ ४५ लाख कोस	६०१२७ दिन (,,१६५ वर्ष)	,, १७००० कोस

[3]अवांतर ग्रहों के लिये केवल सरदल (औसद) दिया गया है।

इस सारणी के साथ साथ पहले जो गृहों की गतियाँ बत-लाई गई हैं उनको देखने से कई बातें समझ में आती हैं। जो गृह सूर्य्य से जितना ही दूर है उसका वेग उतना ही कम है। बुध का वेग प्रति सेकंड १४½ कोस है परंतु नेपच्यून का केवल १½ कोस। इसका प्रधान कारण यह है कि जो गृह जितनी ही दूर है उस पर सूर्य्य का आकर्षक बल उतना ही कम पड़ता है। जिस गृह की दूरी जितनी अधिक है उसके मार्ग की परिधि भी उतनी ही बड़ी होगी। इसी लिये दूर के गृहों का परिभ्रमण काल अधिक है। बुध में ८८ दिन का वर्ष होता होगा परंतु नेपच्यून का वर्ष हमारे १६५ वर्षों के बराबर होता होगा। यदि बुध और पृथ्वी पर एक ही दिन दो बच्चों का जन्म हो तो जब तक पृथ्वी पर का बच्चा साल भर का हो, बुध पर का बच्चा ४ वर्ष का हो चुका होगा। इसी भाँति यदि नेपच्यून और पृथ्वी पर दो बच्चे एक साथ जन्म लें तो जिस समय पृथ्वीवाला व्यक्ति ८० वर्ष का वृद्ध हो कर पुत्रपौत्र छोड़ कर मर जायगा उस समय नेपच्यून पर जन्म हुआ बच्चा केवल छ महीने का बालक होगा।

इन ग्रहों के परिमाण और दूरी को समझने के लिये एक ज्योतिषी ने यह युक्ति बताई है। यदि हम एक नौ फुट के गोले को सूर्य्य मान लें, तो उससे १२७ गज़ की दूरी पर एक बड़ा मटर का दाना बुध के स्थान में होगा; २३५ गज पर एक इंच का गेंद शुक्र होगा; ३२५ गज़ पर एक इंच का गेंद पृथ्वी होगी; ४९५ गज़ पर आधे इंच की गोली मंगल होगी; लगभग १००० गज़ पर कुछ छोटे छोटे दाने

अवांतर ग्रह होंगे; १ मील पर ग्यारह इंच का गोला वृहस्पति होगा; पौने दो मील पर ९ इंच का गोला शनि होगा और साढ़े पांच मील पर चार इंच का गोला युरेनस होगा तथा लगभग इतनाही बड़ा गोला इससे १५० गज पीछे हट कर नेपच्यून के स्थान में होगा।

हमने ऊपर लिखा है कि सूर्य्य इन ग्रहों को परिचालित करता है, पर यह न भूलना चाहिए कि इनके साथ साथ उपग्रहों का भी नियामक, पोषक, शासक सूर्य्य ही है। जिस प्रकार ग्रहों में परिमाण भेद है उसी प्रकार तौल का भी भेद है। अंतर्ग्रह (inner planets) अर्थात् वे चारों ग्रह जो अन्य ग्रहों से पहले आते हैं पृथ्वी से हल्के हैं और बहिर्ग्रह (outer planets) अर्थात् अवांतर ग्रहों के बाहर के ग्रह पृथ्वी से भारी हैं। तौल में भेद होने के दो कारण हैं। एक तो इन सब का परिमाण बराबर नहीं है और दूसरे इनके आपेक्षिक गुरुत्व में भेद है। यदि दो ग्रहों के दो बराबर बराबर टुकड़े काट लिए जॉय तो उनका तौल बराबर न होगा। सब ग्रह बराबर घनीभूत और ठोस नहीं हैं।

हमने ग्रहों को अंतर्ग्रह और बहिर्ग्रह दो विभागों में बाँट दिया है। ये विभाग कल्पित नहीं हैं। सारणी के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवांतर ग्रहों ने दो स्वाभाविक विभागों के बीच में स्थान पाया है। जिन ग्रहों का व्यास, परिभ्रमण-काल और सूर्य्य से अंतर अधिक है वे इनके एक ओर हैं और जिनका व्यास, परिभ्रमण काल और अंतर कम है वे दूसरी ओर।

जैसा कि आकर्षण सिद्धांत की व्याख्या करते हुए बत-

लाया गया है, आकर्षण शक्ति द्रव्यमान पर निर्भर है। जिन गृहों का द्रव्यमान कम है उनकी आकर्षण शक्ति अधिक द्रव्य-मानवालों की अपेक्षा कम है। किसी वस्तु का गुरुत्व उस शक्ति को कहते हैं जिससे वह उस गृह की ओर खिंच रही हो, जिस पर वह हो। यदि किसी वस्तु को दूने बल से वह गृह खींचता हो तो उस वस्तु का गुरुत्व या बोझ दूना होगा। (देखिए भौतिक विज्ञान पृष्ठ १३—१७) अतः जिन गृहों का द्रव्यमान अधिक है और फलत. जिनमें आकर्षण शक्ति भी अधिक है उन पर वही वस्तु भारी हो जायगी और कम द्रव्य-मानवाले गृहों पर हल्की। सब गृहों की आपेक्षिक शक्तियों का ध्यान रखते हुए ज्योतिषियों ने इस बात के समझने के लिये कई उदाहरण बनाए हैं, जैसे, यदि किसी पत्थर का तौल पृथ्वी पर १२ सेर हो तो बृहस्पति पर २८ सेर, शनि पर १४ सेर, शुक्र पर १० सेर, मंगल पर ५ सेर, और चंद्रमा पर २ ही सेर रह जायगा। अवांतर गृहों पर वह कठिनता से कुछ छटांक ठहरेगा।

मान लीजिए कि हमारा शारीरिक बल जितना है उतना ही रहे और हम यहाँ से सूर्य्य पर पहुँचा दिए जाँय। वहाँ सब वस्तुएँ यहाँ से २७ गुणा भारी हो जाँयगी, जेब में से घड़ी निकालना कठिन हो जायगा। अपना हाथ उठाना कठिन होगा। यदि हम एक बार बैठ जाँय तो अपने शरीर को खड़ा करना असंभव होगा। परंतु यदि हम चंद्रमा मे पहुँच जाँय तो वहाँ प्रत्येक वस्तु का तौल $\frac{1}{6}$ रह जायगा। जितने श्रम से हम एक छोटे से गढ़े को कूद कर पार करते हैं उतने में एक मकान पार

किया जा सकता है। यदि हम वहाँ से चल कर किसी अवांतर गृह में पहुँच जाँय तो वहाँ तो तौल लुप्तप्राय हो जायगा। जिस पत्थर का तौल यहाँ मनों होगा वह वहाँ उंगुलियों पर नचाया जा सकता है। यदि हम बलपूर्वक एक फुटबाल को ऊपर उछालें तो वह कदाचित् लौट कर उस गृह तक आएगा ही नहीं। इन उदाहरणों से हमको भिन्न भिन्न गृहों के द्रव्यमानों का कुछ कुछ ज्ञान हो सकता है।

सौरचक्र में महों और उपगृहों के अतिरिक्त कुछ और भी पिंड हैं, जिनको केतु और उल्का कहते हैं। इन विलक्षण पिंडों का वर्णन एक स्वतंत्र अध्याय में किया जायगा। जहाँ तक ज्ञात है अवांतर महों की सख्या ७०० के लगभग है परंतु यह कोई नहीं कह सकता कि सूर्य्य के साथ कितने केतुओं और उल्काओं का संबंध है। हमने पहले सूर्य्य को नवगृह का राजा बतलाया है परंतु इन पिंडों को देख कर हठात् यह कहना पड़ता है कि वह नवगृह नहीं प्रत्युत् असंख्य जगतों का स्वामी है। इतना ही नहीं वरन् वह सदैव जैसा कि एक योग्य पिता को करना चाहिए, इन सब की रक्षा और परिचर्य्या करता रहता है।

गृहों के नामों में दो नाम युरेनस और नेपच्यून अंग्रेज़ी हैं, कारण यह है कि जहाँ तक ज्ञात होता है प्राचीन ज्योतिषी इनसे परिचित न थे। युरेनस तो कभी कभी बिना यंत्र के दिखाई भी पड़ता है पर नेपच्यून बिना दूरदर्शक यंत्र के नहीं देखा जा सकता। बुध के आगे या नेपच्यून के पीछे कोई गृह है या नहीं, यह एक बड़ा रोचक प्रश्न है, परंतु इसका अभी तक

अंतिम उत्तर नहीं दिया जा सका है। हाँ, जहाँ तक खोज की गई किसी नवीन गृह का पता नहीं चला, पर संभव है कि भविष्यत् में किसी भाग्यशाली ज्योतिषी को इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो।

नए गृहों को ढूँढ़ना अलग रखते हुए, पुराने गृहों के संबंध में भी अभी बहुत सी बातें अज्ञात हैं पर दुःख की बात यह है कि हममें से अधिकांश इनको पहचानते तक नहीं। बहुत लोग ऐसे मिलेंगे जो शुक्र के अतिरिक्त किसी भी गृह को नहीं जानते और ऐसे लोगों का मिलना भी असंभव नहीं है जो शुक्र को भी न जानते हों। परंतु इन गृहों को पहचानना कुछ बहुत कठिन नहीं हैं। ये चल हैं। आकाश में आज एक जगह उदय होते हैं, कल दूसरी जगह। तारों के समान एक ही स्थान पर स्थिर नहीं रहते, इसलिये थोड़ा सा परिश्रम करने से भी हम इनको पहचान सकते हैं।

---

(६) बुध और शुक्र ।

(क) बुध ।

गृहों में बुध सूर्य्य के निकटतम है। सूर्य्य के सामीप्य के जो फल होते हों वे सभी पूर्ण रूप से बुध पर प्राप्त होंगे। सूर्य्य का प्रकाश और तेज दोनों ही वहां अति प्रचंडरूप से पड़ते होंगे। परंतु इस प्रकाश के होते हुए भी बुध को देखना अत्यंत कठिन है। इसका प्रधान कारण सूर्य्य का सान्निध्य है। वह सूर्य्य के इतना निकट है कि जब देख पड़ता है सूर्य्य के पास ही देख पड़ता है। दिन में तो सूर्य्य के तेज के सामने उसका पृष्ठ छिप जाता है परंतु प्रातःकाल सूर्य्य के पहले और सायंकाल सूर्य्यास्त के पश्चात् वह देखा जा सकता है। छोटा होने के कारण वह प्रकाश का एक बिंदु सा प्रतीत होता है और इसलिये भी दृष्टिपात से बच जाता है। एक और भी आपत्ति है। प्रातःकाल तथा सायंकाल के समय सूर्य्य क्षितिज पर होता है (यदि हम किसी मैदान में खड़े हो कर चारों ओर देखें तो जहाँ तक हमारी दृष्टि जा सकती है वहां पर आकाश पृथ्वी से मिलता हुआ प्रतीत होता है। उस स्थल का नाम क्षितिज है।) इसलिये प्रकाश की जो जो किरणें उस समय हमारी आँखों तक पहुँचती हैं उनको ऊपर से आनेवाली किरणों की अपेक्षा वायुमंडल का अधिक भाग तय करना पड़ता है। यदि वायु में गर्द या कोहरा हो

तो ऐसी किरणों के लुप्त हो जाने की आशंका है। नीचे के चित्र में क और ख दो पिंड दिखलाए गए हैं, जिनमें एक ऊपर है तथा दूसरा क्षितिज पर है। यदि ख को बुध मान लिया जाय तो यह बात सरलता से समझ में आ सकती है कि उसका न देख पड़ना कितना संभव है।
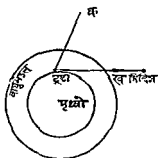
जो ग्रह क्षितिज छोड़ कर ऊपर आते हैं उनके विषय में यह कठिनाई उपस्थित नहीं होती। भारतवर्ष में या अन्य गरम देशों में तो प्रायः क्षितिज पर जलकण या कुहरा कम होता है। बहुधा आकाश निर्मल ही रहता है परंतु ठंढे देशों में कुहरा बहुत पड़ता है। इसलिये कभी कभी बहुत काल तक बुध के दर्शन नहीं हो पाते। साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या है, बड़े बड़े ज्योतिषी भी वहाँ इसको कठिनाई से देख सकते हैं! कहा जाता है कि प्रसिद्ध ज्योतिषी कापर्निकस (Copernicus) को, अनेक बार प्रयत्न करने पर भी, बुध कभी न दिखलाई दिया, मरते समय तक उसकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। इसका मुख्य कारण यही है कि वे जिस

जगह रहते थे वह विस्तुला नदी के निकट है जहां प्रातःकाल और सायंकाल कदाचित् ही कभी क्षितिज कुहरे से शून्य रहता है। वहाँ वायु प्रायः सदैव ही जलकणों से परिप्लुत रहती है। प्राचीन यूनानवाले इसको 'the sparkling one' 'स्फुरद्ग्रह' कहा करते थे। इसका कारण यह है कि जो ग्रह आकाश में ऊपर उठते हैं उनमें से स्थिर प्रकाश आता है परंतु क्षितिज के पास प्रायः कुछ न कुछ जलकण होने से इनमें से एक प्रकार का चंचल प्रकाश आता है।

अभी तक हमने बुध को देखने में कठिनाई का कारण यह बतलाया है कि वह सूर्य के निकट है। परंतु इसके अतिरिक्त एक और बात ऐसी है जिससे जब बुध देख भी पड़ता है तो उसके संबंध में विशेष बातों का जानना असंभव हो जाता है। दूरदर्शक यंत्र भी इसे देखने में हार जाते हैं। चंद्रमा के अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि किसी पिंड को देखने का सब से उत्तम अवसर तब होता है जब कि वह सूर्य से ठीक सामने की दिशा में हो जैसा कि २६ वें पृष्ठ पर दिए चित्र में बना हुआ है। उस समय पृथ्वी उस पिंड और सूर्य के बीच में होती है और उस पर सूर्य का पूरा प्रकाश पड़ता है। इसलिये उसका पृष्ठ भली भांति देख पड़ता है। परंतु बुध इस प्रकार देखा ही नहीं जा सकता। उसका परिभ्रमण मार्ग पृथ्वी के मार्ग के भीतर है। इसलिये ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि वह चंद्रमा की भाँति कभी सूर्य के ठीक सामने की दिशा में देख पड़े। हम जब देखेंगे सूर्य और बुध को लगभग एक ही दिशा में देखेंगे।

दूसरा अवसर इसको देखने का उस समय हो सकता था जब कि सूर्य्य बीच में हो और पृथ्वी, सूर्य्य और बुध तीनों एक सीध में हों। जब कोई गृह इस प्रकार उपस्थित होता है तो वह सूर्य्य के साथ प्रधान युति (Superior Conjunction) में कहा जाता है। परंतु इस युति के समय सूर्य्य के प्रचंड प्रकाश में बुध का पता ही नहीं लगता।
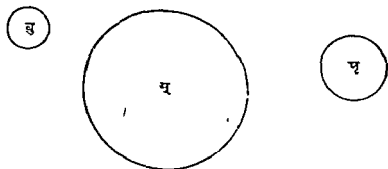
जिस समय बुध घूमता घूमता सूर्य्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है, उस समय जिस प्रकार चंद्रमा अमावास्या के दिन अदृश्य रहता है उसी प्रकार वह भी नहीं देख पड़ता, क्योंकि उसके जिस पृष्ठ पर सूर्य्य का प्रकाश पड़ रहा है वह हम से फिरा हुआ है। ग्रहों के इस प्रकार स्थित होने को लघु युति (Inferior Conjunction) कहते हैं। देखो अगले पृष्ठ का पहला चित्र।
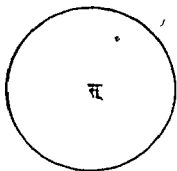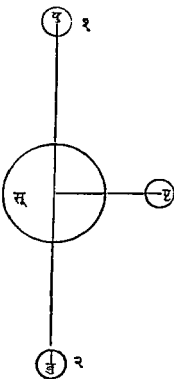
अत हम बुध उस समय देख सकते हैं जब वह और सूर्य्य लंब दिशाओं में हों। ग्रहों की इस स्थिति को प्रतान (elongation)कहते हैं।

इन चित्रों से यह बात स्पष्ट है कि बुध भी चद्रमा के समान रूप बदलता देख पड़ता है। प्रधान युति के समय पूर्ण बुध होगा और लघु युति के समय अमावास्या के चद्रमा की भाँति बुध अदृश्य होगा। इन दोनों के बीच मे बुध भी रूप बदलता बदलता क्रमश. दोनों प्रतानों के समय

अर्ध बुध (अर्धचद्र के सदृश) के रूप में देख पड़ेगा ।

बुध भी पृथ्वी की भांति पश्चिम से पूर्व की ओर सूर्य्य की परिक्रमा करता है । इसलिये जब वह प्रधान युति के उपरात धीरे धीरे आगे बढ़ता है तो पहले पश्चिम में देख पड़ता है, सूर्य्यास्त के कुछ काल पीछे निकलता है और चंद्रमा की भाँति नित्य कुछ कुछ पूर्व की ओर बढ़ता है। जब वह ५९ पृष्ठ के दूसरे चित्र के प्रतान (२) से होता हुआ और रूप बदलता हुआ लघुयुति (५८ पृष्ठ पर दिए चित्र) पर पहुँचता है तो अदृश्य हो जाता है । इसके उपरांत वह पूर्व में प्रातःकाल के समय निकलने लगता है । ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता है नित्य प्रति पश्चिम की ओर हटता जाता है यहाँ तक कि जब ५९ पृष्ठ पर दिए हुए दूसरे चित्र के प्रतान से होता हुआ और रूप बदलता हुआ फिर प्रधान युति पर पहुँचता है तो अदृश्य हो जाता है । भिन्न भिन्न समयों पर बुध के जो रूप होते हैं वे पृष्ठ ६१ में दिए हुए हैं ।

इसका आकार भी क्रमश घटता और बढ़ता देख पड़ता है । इसका कारण यह है कि जब बुध पृथ्वी के निकट आता है तो बड़ा देख पड़ता है और जब पृथ्वी से हटता है तो छोटा होता जाता है ।

बुध भी पृथ्वी की भाँति अक्षभ्रमण करता है । कुछ दिन तक ज्योतिषियों का यह अनुमान था कि उसको भी इस काम में लगभग चौबीस घंटे लगते हैं. परंतु अब यह निश्चित हो गया है कि इसके अक्ष भ्रमण और परिभ्रमण काल बराबर हैं। इसका एक अक्षभ्रमण ८८ दिनों में समाप्त होता

है। अतः जिस प्रकार चंद्रमा का एक ही पृष्ठ सदैव पृथ्वी के सामने रहता है, उसी भांति इसका भी एक ही पृष्ठ सदैव सूर्य्य के सामने रहता है। इस पृष्ठ पर निरंतर भयानक गर्मी रहती होगी और दूसरे पृष्ठ पर उसी मात्रा में भयानक शीत। एक ओर लगातार दिन रहता होगा और दूसरी ओर रात।

बुध के पृष्ठ के संबंध में उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण बहुत कम बातें ज्ञात हैं। उस पर भी कुछ धब्बे और चिह्न देख पड़ते हैं। जहाँ तक पता लगा है वह भी चंद्रमा की भाँति पहाड़ों और दरारों से भरा हुआ है। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि बुध पर जल वायु है या नहीं। बहुत से ज्योतिषियों के मत में वह भी चंद्रमा की भाँति एक मृत जगत् है। जो कुछ हो, जिस प्रकार के जीव पृथ्वी पर हैं ऐसे जीवों का उस पर होना कठिन है। बुध के उस अंश से जो सूर्य्य से छिपा रहता है आकाश बड़ा भला प्रतीत होगा। शुक्रोदय और पृथ्व्योदय वहाँ बड़े सुहावने दृग्विषय होते होंगे। पृथ्वी के साथ साथ वहाँ से चंद्रमा भी एक छोटे तारे के समान देख पड़ता होगा। परंतु जिस प्रकार हम

बुध के उस भाग को भी जो सूर्य्य के सामने है अच्छी भांति नहीं देख पाते उसी प्रकार की कठिनाई वहाँवालों को न होती होगी क्योंकि पृथ्वी का मार्ग बुध के मार्ग के बाहर है। हाँ दूरी के कारण हमारा पृष्ठ बहुत अच्छी तरह से कदाचित् न देख पड़ता होगा।

(ख) शुक्र।

ग्रहों में शुक्र हम से सबसे निकट है। इसका अंतर पृथ्वी से एक करोड़ कोस से कुछ ही अधिक है। इससे यह आशा की जा सकती थी कि हम इसके पृष्ठ को भली भांति देख सकेंगे और इसके संबंध में बहुत सी बातों का पता लगा सकेंगे। परंतु जो कठिनाइयाँ बुध के विषय में पड़ती हैं वे ही यहाँ भी उपस्थित होती हैं। इसका मार्ग भी पृथ्वी के क्रांतिवृत्त के भीतर है और यह भी पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य्य के निकट है। इसलिये यह भी प्रातःकाल और सायंकाल के समय ही देखा जा सकता है, यद्यपि यह बुध से ऊंचा उठता है और उसकी अपेक्षा आकाश में देर तक रहता है। यह भी अपनी युतियों के समय अदृश्य रहता है और प्रतानों के ही समय भली भाँति देख पड़ता है। जिस प्रकार दूरदर्शक यंत्र से देखने से बुध चंद्रमा के समान रूप बदलता रहता है उसी प्रकार यह भी ठीक वैसे ही और उसी क्रम से रूप बदलता है। यह भी प्रधान युति के पीछे पश्चिम में निकलता है और पूर्व की ओर बढ़ता बढ़ता लघु युति के समय लुप्त हो जाता है और फिर दूसरे दिन सबेरे पूरब में निकल कर पश्चिम

की ओर बढ़ता बढ़ता प्रधान युति के समय फिर अदृश्य हो जाता है। इसी कारण शुक्र और बुध दोनों का विचार एक ही अध्याय में किया गया है।

परंतु बुध की भाँति शुक्र को पहचानना उतना कठिन नहीं है। एक तो यह आकाश में बुध की अपेक्षा बहुत ऊँचाई तक जाता है, दूसरे बहुत देर तक (दो घंटे से ऊपर) देख पड़ता है और तीसरे पूरब या पश्चिम जिधर हो बहुत दिनों तक रहता है, क्योंकि इसका भ्रमण-काल बुध का लगभग २½ गुणा है। सब से बड़ी बात यह है कि यह ग्रहों में सब से चमकीला है। कभी कभी अँधेरी रात में शुक्र की ज्योति से परछाईं तक पड़ती है और जल में शुक्र का प्रतिबिंब स्पष्ट देख पड़ता है। प्राचीन यूनान के लोगों ने इसके निर्मल प्रकाश से मुग्ध हो कर इसका नाम विनस (Venus) रखा था। यह नाम उनकी सौंदर्य की देवी का था। हमारे देश में ग्रामीण मनुष्य भी इसको पहचानते हैं।

यह भी और ग्रहों की भाँति अपनी अक्ष पर घूमता है और इसका अक्षभ्रमण काल भी परिभ्रमण काल के बराबर अर्थात् २२५ दिनों का है। शुक्र पर हमारे २२५ दिनों में एक 'दिन रात' होता होगा। इसी कारण इसका भी एक ही पृष्ठ सदैव सूर्य के सामने और दूसरा सदैव सूर्य से छिपा हुआ रहता होगा।

इसके पृष्ठ के संबंध में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं परंतु जहां तक पता चलता है इस पर भी पहाड़ बहुत हैं। इसके कोई कोई पहाड़ हिमालय की चोटियों से भी अधिक ऊँचे हैं।

परंतु एक बात इस में बुध से भिन्न है। इसमें वायु और जल दोनों हैं। शुक्र का पृष्ठ सदैव अत्यंत घने बादलों से ढका रहता है, जिसके भीतर से पहाड़ों की दो चार चोटियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख पड़ता।

इस वायुमंडल के होने के कारण वहाँ एक और दृश्य होता होगा। जो भाग कि सूर्य्य के सामने है उस पर की वायु तप्त हो कर ऊपर को उठती होगी और उसके स्थान में दोनों ओर से ठंढी हवा वेग के साथ आती होगी। पृथ्वी पर भी ऐसा होता है पर कभी कभी और किसी किसी प्रांत में शुक्र पर यह दृग्विषय प्रति क्षण होता होगा। वहां सदैव ही चंड वात (तेज आँधी) चला करती होगी।

शुक्र पर किसी प्रकार के जीव हैं या नहीं इस विषय में बहुत विवाद है। उसके लंबे अक्षभ्रमण काल और घने मेघ-पूर्ण वायुमंडल को देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी मृत जगत् है। परंतु कुछ ज्योतिषियों का मत है कि उस पर कम से कम वैसे वृक्ष तो अवश्य होंगे जैसे कि पृथ्वी पर गरम देशों में होते हैं। यदि शुक्र पर किसी प्रकार के प्राणी होंगे तो उनको आकाशस्थ ग्रह या तारे स्यात् ही कभी देख पड़ते होंगे; पर यदि कभी उनके भाग्य से बादल कुछ काल के लिये फट जाते होंगे तो जो भाग सूर्य्य से विमुख है वहाँ वालों को सब से प्रकाशमान् पिंड पृथ्वी ही देख पड़ती होगी। चंद्रमा भी स्पष्ट देख पड़ता होगा और निकट होने के कारण पृथ्वी का आकाश में चलना और चंद्रमा का उसकी परिक्रमा करना एक बड़ा ही मनोरंजक दृश्य होता होगा। शुक्र के साथ कोई-

उपग्रह नहीं है, इसलिये उसकी मेघाच्छन्न लंबी रातों में यदि कभी प्रकाश होता होगा तो वह विशेषतः चंद्रयुत पृथ्वी के ही द्वारा होता होगा।

जिस प्रकार सूर्य्य और पृथ्वी के बीच मे चंद्रमा के आ जाने से सूर्य्यग्रहण लगता है उसी प्रकार कभी कभी बुध और शुक्र भी सूर्य्य के सामने आ जाते हैं। इसको संक्रमण (transit) कहते हैं। इनके बिंब इतने छोटे हैं कि इनसे ग्रहण तो लग नहीं सकता पर ये सूर्य्यपृष्ठ के सामने काले धब्बे से प्रतीत होते हैं। इनसे विशेषतः शुक्र के संक्रमण से कई गणित संबंधी बातें निकाली जाती हैं। बुध का एक संक्रमण सन् १९१७ (सवत् १९७४) में होगा। शुक्र के भावी संक्रमण सन् २००४ (सं २०६१), सन् २०१२, (सं २०६९), सन् २११७ (स २१७४) और सन् २१२५ (सं २१८२) में होंगे।

---

(७) मंगल ।

सौरचक्र के पिंडों में हम को जितना वृत्तांत मंगल का ज्ञात है उतना किसी और का नहीं। एक तो इसको देखने में वे कठिनाइयाँ नहीं पड़तीं जो बुध और शुक्र के संबंध में उपस्थित होती हैं। मंगल का मार्ग हमारे क्रांति-वृत्त के बाहर है, इसलिये हम उसको षड्भांतर (opposition) के समय वैसे ही देख सकते हैं जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन चंद्रमा को। सूर्य्य से दूर होने के कारण यह आकाश में पूर्ण उँचाई तक चढ़ता है और रात भर तक देख पड़ता है। पृथ्वी के वृत्त के बाहर होने के कारण यह बुध और शुक्र की भाँति रूप नहीं बदला करता प्रत्युत् सदैव पूर्ण बिंब सा देख पड़ता है। परंतु पृथ्वी का क्रांति-वृत्त मंगल के मार्ग के भीतर है, इसलिये यदि कोई मंगल से देखता होगा तो उसको पृथ्वी वैसी ही दीखती होगी जैसे हमको बुध या शुक्र। वहाँ से पृथ्वी भी सूर्य्योदय तथा सूर्य्यास्त के समय सूर्य्य के निकट उदय होती होगी और क्रम से अपना रूप बदलती होगी।

दूसरी सुगमता मंगल को देखने में यह है कि यद्यपि उसमें शुक्र के बराबर चमक नहीं होती परंतु उसके रंग से वह पहचाना जाता है। मंगल रक्त वर्ण है। हर पंद्रहवें वर्ष उसका रंग और उद्दीप्त देख पड़ता है। यह रंग नए रक्त से इतना मिलता है कि लोग कभी कभी उसको देख कर डर जाते थे। बहुत सी असभ्य जातियाँ और अशिक्षित पुरुष अब भी इस

को देख कर घबरा उठते हैं। पुराने रोमन लोग मंगल (Mars) को युद्ध का अधिष्ठाता देवता मानते थे। अंग्रेजी का मार्शल (Martial) शब्द जिसका अर्थ 'युद्ध संबंधी' है, इसी के नाम से बना है। हिंदू ज्योतिषी मंगल से इतने नहीं डरे थे। उन्होंने इसको नाम भी बड़ा अच्छा दिया है, यद्यपि उनके मत से भी यह एक उग्र ग्रह है।

मंगल कई बातों में पृथ्वी से मिलता है। उसका अक्षभ्रमण काल लगभग २४ घंटे ३७½ मिनट के बराबर, अर्थात् पृथ्वी से आध घंटा अधिक है। अतः मंगल में भी हमारे बराबर ही दिन रात होते होंगे। सारणी (पृष्ठ ४९) में बतलाया गया है कि मंगल को सूर्य्य की परिक्रमा करने में ६८७ दिन लगते हैं। ये पार्थिव दिन हैं। मंगल का एक वर्ष वस्तुतः मंगल के ६६९ दिनों के बराबर होता है।

पृथ्वी की भाँति मंगल का अक्ष भी मार्ग के साथ लगभग ६६ अंश का कोण बनाता है अर्थात् वह भी मंगल के वृत्त की ओर उतना ही झुका हुआ है जितना पृथ्वी का अक्ष पृथ्वी के वृत्त पर। इसलिये दूर होने के कारण यद्यपि मंगल पर गर्मी कुछ कम पड़ती होगी, फिर भी वहाँ पृथ्वी के समान ही ऋतुपरिवर्त्तन होता होगा।

ये साधारण बातें हैं। इनके अतिरिक्त मंगल कई असाधारण बातों में पृथ्वी से बहुत कुछ मिलता जुलता है। उस में भी वायुमंडल है जो बहुत दूर तक फैला हुआ है, पर बहुत पतला है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह हवा हिमालय पहाड़ के ऊपर की पतली हवा से भी अधिक

पतली है। इस वायुमंडल में कार्बोनिक एसिड गैस (Corbonic acid gas) की मात्रा अधिक है। यह वह गैस है जो कोयलों के जलने से उत्पन्न होती है और जिसको हम सांस के साथ बाहर निकालते हैं। हमारे लिये यह विष का काम करती है। हमारा वायुमंडल सूर्य्य की किरणों को इस प्रकार चारों ओर छिटका देता है कि कम प्रकाशवाले पिंड लुप्त हो जाते हैं, परंतु मंगल से दिन में भी तारे देख पड़ते होंगे और कदाचित् सूर्य्य का प्रभामंडल (जिसको हम केवल सूर्य्यग्रहण के समय देख सकते हैं) भी नित्य देख पड़ता होगा।

जिस प्रकार पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के पास बर्फ जमी रहती है उसी प्रकार मंगल के ध्रुवों के पास भी, दूरदर्शक यंत्र से देखने से, कोई श्वेत पदार्थ देख पड़ता है। जब यह पहले पहल देखा गया तो स्वतः यह अनुमान हुआ कि कदाचित् यह भी बर्फ हो। थोड़े ही दिनों में यह अनुमान पक्का हो गया और यह बात निश्चित हो गई कि यह सिवा बर्फ के और कुछ नहीं हो सकता। जब मंगल सूर्य्य की परिक्रमा करते करते ऐसे स्थान में पहुँचता है जब कि उसके उत्तरी भाग में गर्मी पड़नी चाहिए (३ रा स्थान-चित्र पृष्ठ १३) तो उत्तरी ध्रुव के पास की श्वेत टोपी छोटी होने लगती है। यह बात ठीक उसी प्रकार होती है जैसे कि पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव की बर्फ गर्मी में अधिकांश गल जाती है। ज्यों ज्यों मंगल उस ओर पहुँचता है जहाँ कि उसके उत्तरी भाग में सर्दी पड़नी चाहिए (१ला स्थान-चित्र पृष्ठ १३) त्यों त्यों यह श्वेत टोपी फिर बढ़ने लगती है जैसा कि बर्फ के जमने

से होता है। दक्षिणी ध्रुव की ओर ठीक इसका उल्टा देख पड़ता है। इस प्रमाण से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई कि मंगल के दोनों ध्रुवों के पास पृथ्वी की भाँति वर्फ है। इसका एक प्रमाण और भी है कि जिस समय यह वर्फ गलती है उस समय उससे नीचे की ओर नीले रंग के क्षेत्र देख पड़ने लगते हैं। यह नीला रंग वर्फ के गलने से जो पानी बना है उसका ही हो सकता है।

इन हिमक्षेत्रों के अतिरिक्त मंगल का अधिकांश पृष्ठ लाल है। इसके बीच बीच में कहीं कहीं हरे रंग के मैदान देख पड़ते हैं। इन लाल और हरे मैदानों को देख कर ज्योतिषियों ने यह अनुमान किया है कि लाल मैदान स्थल हैं, और हरे मैदान जल। स्थलों के लाल होने का कारण यह मान लिया गया है कि वहाँ लाल मिट्टी होती होगी। इस अनुमान के अनुसार मंगल के चित्रपट (नकशे) बना लिए गए, जिनमें उस पर के सभी मुख्य मुख्य स्थानों को कल्पित नाम दे कर सारा ग्रह महाद्वीपों और महासागरों में बाँट दिया गया है। ज्योतिषियों ने यह निश्चय कर लिया है कि मंगल भी पृथ्वी के सदृश एक जगत् है और यद्यपि कोई समुचित प्रमाण नहीं मिलता था, पर यह अनुमान कर लिया गया कि संभवतः उसमें भी पृथ्वी के समान प्राणी होंगे।

परंतु सन् १८७७ से इन मतों में परिवर्तन आरंभ हुआ। उसी वर्ष प्रसिद्ध ज्योतिषी शियापेरेली को कुछ धारियाँ देख पड़ीं। इनको उन्होंने 'नहर' का नाम दिया। कई बरसों तक तो और ज्योतिषियों को इन नहरों (Canals) के

अस्तित्व में ही संदेह था क्योंकि कई कारणों से ये उनको देख ही न पड़ीं, परंतु सन् १८८६ में और लोगों ने भी इनको देखा और उस समय से अब तक ये सब को ही देख पड़ती हैं। अब इनके अस्तित्व में प्रायः किसी को भी संदेह नहीं है। दृष्ट नहरों की संख्या भी बढ़ती जाती है। इस समय अच्छे यन्त्रों से तीन सौ से ऊपर नहरें देखी जा सकती हैं।

ये नहरें मंगल के ध्रुवों के पास आरंभ होती हैं और लाल भाग के बीच की ओर जाती हैं। जहाँ कई नहरें मिलती हैं वहाँ हरे रंग के बड़े बड़े मैदान हैं। इनको 'झील' का नाम दिया गया है। कई नहरें दस दस कोस चौड़ी हैं। सब से लंबी नहर जिसको यूमिनिडीज़ आर्कस (EumenidesOrcus) कहते हैं १७७० कोस लंबी है।

इन नहरों के संबंध में और भी कई स्मरणीय बातें हैं। जिस समय मंगल पर सर्दी पड़ती है और उसके ध्रुव के पास बर्फ जमने लगती है तो ये नहरें पतली हो जाती हैं। जब गर्मी में बर्फ़ गलने लगती है तो ये मोटी और चौड़ी होने लगती हैं और साथ ही साथ बर्फ के गलने से उसके नीचे जो पानी बनता है और जो, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, पृथ्वी से नीला मैदान सा देख पड़ता है वह भी पतला और छोटा होता जाता है। इन आश्चर्यों की संख्या इस बात से और बढ़ गई है कि थोड़े दिन हुए एक नई नहर देखी गई है और एक पुरानी नहर के ठीक बगल में एक और नहर देख पड़ने लगी है।

'ये नहरें वस्तुतः क्या हैं ?' यह एक बड़ा रोचक प्रश्न

है। कुछ ज्योतिषियों ने पहले यह अनुमान किया कि ये दरारें हैं, परंतु इन्हें दरार मानने से जिन सब बातों का कथन ऊपर किया गया है वे समझ में नहीं आतीं। फिर ये नहरें इतनी सीधी और नियमपूर्वक बनीं प्रतीत होती हैं कि प्राकृतिक दरारें प्रायः ऐसी नहीं होतीं।

इस विषय पर और ज्योतिषियों की अपेक्षा अमेरिका के मिस्टर लोवेल (Mr. Lowell) ने अधिक विचार किया है। कई वर्षों के अन्वेषण और कठिन परिश्रम के उपरांत उन्होंने एक सिद्धांत निश्चित किया है। उसका सारांश यों है—

मंगल किसी समय पृथ्वी के सदृश था परंतु अब उसकी वह दशा नहीं है। अब वह वृद्ध हो गया है। यद्यपि वह अभी चंद्रमा के समान मृत जगत् नहीं हुआ है परंतु पृथ्वी से पुराना है। उसकी अवस्था पृथ्वी और चंद्रमा, बुध इत्यादि के बीच की है। किसी दिन पृथ्वी की भी यही दशा या इसी से मिलती जुलती दशा होनेवाली है। उसका जो भाग पृथ्वी से लाल रंग का देख पड़ता है, वह शुष्क मरुभूमि है। किसी समय वहाँ जल या खेत रहे हों, पर उसकी दशा मारवाड़ के वालुकामय मैदानों जैसी है। उसके जो टुकड़े हरे देख पड़ते हैं वे समुद्र नहीं प्रत्युत् हरे भरे मैदान हैं। मंगल पर वायु तो थोड़ी है ही, जल भी थोड़ा ही है, इस लिये उस पर सब जगह खेती नहीं हो सकती और न प्राणी रह सकते हैं। वहाँ के रहनेवाले अत्यंत सभ्य और सुशिक्षित हैं। इसीलिये उन्होंने अपने ध्रुवों के पास से नहरें खोदी हैं और अब भी आवश्यकतानुसार खोदते जाते हैं। जब गर्मी

में बर्फ गलती है तो वे उससे बने हुए जल को उन जगहों में ले जाते हैं जहाँ अभी खेती हो सकती है अर्थात् जो जगहें रेत से बची हुई हैं । इसीलिये गर्मी में नहरें मोटी देख पड़ती हैं और ध्रुवों के पास बर्फ गलने से जो नीला पानी देख पड़ता है वह क्षीण होता जाता है। हम नहरों को तो देख नहीं सकते किंतु उनके किनारों पर के हरे मैदानों को देखते हैं। जहाँ कई नहरें मिलती हैं वहाँ झीलें नहीं प्रत्युत् शाद्वल (Oases) हैं।

(शाद्वल उस हरे भरे स्थान को कहते हैं जो किसी मरु-स्थल के बीच में होता है।)

यदि यह मत सत्य है—और अभी तक इसको असत्य समझने का कोई कारण ज्ञात नहीं हुआ है—तो मंगल के निवासी कैसे विलक्षण प्राणी होंगे । इतनी लंबी नहरों को खोदना और उनको बराबर ठीक अवस्था में रखना साधारण बुद्धिमत्ता का काम नहीं है । आप से आप तो जल इतनी दूर बहता जायगा ही नहीं, यदि नहरें गहरी न हों तो वे बहुत जल्दी मिट्टी से भर कर बंद हो जाँयगी । हम लोग उनकी दूरदर्शिता और विद्वत्ता का अनुमान भी नहीं कर सकते। वहाँ अखंड शांति का राज्य होगा क्योंकि यदि भिन्न भिन्न प्रांतों में युद्ध हुआ करें तो नहरों के प्रबंध में व्यतिक्रम हो जाय। संभव है कि वहाँ पृथ्वी की भाँति नाना राज्यों का भेद ही न हो प्रत्युत् समस्त ग्रह किसी एक शासक के नीचे हो। हम पृथ्वीनिवासियों को अपनी सभ्यता का अ-भिमान है । हमको मंगलवालों से शिक्षा लेनी चाहिए।

संभव है कि जब पृथ्वी की भी ऐसी ही दशा हो जायगी तो यहाँ के लोग भी ऐसे ही शांतिप्रिय और सुशिक्षित हो जाँयगे।

मंगल के साथ दो उपग्रह हैं। परंतु ये हमारे चंद्रमा से अत्यंत भिन्न हैं। एक का नाम फोबस (Phobos) है। इसका व्यास अठारह कोस का है। यह मंगल से कुल २९०० कोस है और ७⅓ घंटे में मंगल की एक परिक्रमा लगा आता है। दूसरे का नाम डाइमस (Deimos) है। इसका व्यास केवल पाँच कोस का है और यह मंगल से ७३०० कोस दूर है। यह ३०½ घंटे में अपनी एक परिक्रमा पूरी करता है। ये दोनों उपग्रह छोटे छोटे कसबों या नगरों के बराबर हैं। इन से मंगल की रात्रियों में उतना प्रकाश न मिलता होगा जितना हमें चंद्रमा से मिलता है। मंगलवालों के आकाश में सूर्य्य और गुरु के पीछे पृथ्वी सब से प्रकाशमान् पिंड होगी। परंतु फोबस के कारण एक तमाशा रहता होगा। वह एक दिन रात में तीन तीन परिक्रमा पूरी करता है, और आकाश को तीन तीन बार पार करता है। कुछ घंटों के भीतर उसके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष समाप्त हो जाते हैं। निकट होने के कारण मंगल पर से उसका सारा पृष्ठ स्पष्ट देख पड़ता होगा। डाइमस भी अत्यंत स्पष्ट दीखता होगा। कहाँ चंद्रमा का ११९००० कोस और कहाँ डाइमस का ७३०० कोस! मंगल के उपग्रह उपयोग के लिये नहीं, शोभा के लिये हैं।

मंगल के संबंध में इतना ही वक्तव्य और शेष है कि

यद्यपि अब ज्योतिषियों के मत में बहुत परिवर्त्तन हो गया है फिर भी जितने चित्रपट बनते हैं उनमें नाम पहले की ही भाँति दिए जाते हैं। अब भी मंगल पर 'महाद्वीप' 'सागर' नदी आदि के ही नाम हैं। हिंदुओं को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि एक नहर का नाम 'गंगा' रक्खा गया है।

में बर्फ़ गलती है तो वे उससे बने हुए जल को उन जगहों में ले जाते हैं जहाँ अभी खेती हो सकती है अर्थात् जो जगहें रेत से बची हुई हैं। इसीलिये गर्मी में नहरें मोटी देख पड़ती हैं और ध्रुवों के पास बर्फ़ गलने से जो नीला पानी देख पड़ता है वह क्षीण होता जाता है। हम नहरों को तो देख नहीं सकते किंतु उनके किनारों पर के हरे मैदानों को देखते हैं। जहाँ कई नहरें मिलती हैं वहाँ झीलें नहीं प्रत्युत् शाद्वल (Oases) हैं।

(शाद्वल उस हरे भरे स्थान को कहते हैं जो किसी मरु-स्थल के बीच में होता है।)

यदि यह मत सत्य है—और अभी तक इसको असत्य समझने का कोई कारण ज्ञात नहीं हुआ है—तो मंगल के निवासी कैसे विलक्षण प्राणी होंगे। इतनी लंबी नहरों को खोदना और उनको बराबर ठीक अवस्था में रखना साधारण बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। आप से आप तो ज़ल इतनी दूर बहता जायगा ही नहीं, यदि नहरें गहरी न हों तो वे बहुत जल्दी मिट्टी से भर कर बंद हो जाँयगी। हम लोग उनकी दूरदर्शिता और विद्वत्ता का अनुमान भी नहीं कर सकते। वहाँ अखंड शांति का राज्य होगा क्योंकि यदि भिन्न भिन्न प्रांतों में युद्ध हुआ करें तो नहरों के प्रबंध में व्यतिक्रम हो जाय। संभव है कि वहाँ पृथ्वी की भाँति नाना राज्यों का भेद ही न हो प्रत्युत् समस्त ग्रह किसी एक शासक के नीचे हो। हम पृथ्वीनिवासियों को अपनी सभ्यता का अ-भिमान है। हमको मंगलवालों से शिक्षा लेनी चाहिए।

संभव है कि जब पृथ्वी की भी ऐसी ही दशा हो जायगी तो यहाँ के लोग भी ऐसे ही शांतिप्रिय और सुशिक्षित हो जाँयगे।

मंगल के साथ दो उपग्रह हैं। परंतु ये हमारे चंद्रमा से अत्यंत भिन्न हैं। एक का नाम फोबस (Phobos) है। इसका व्यास अठारह कोस का है। यह मंगल से कुल २९०० कोस है और ७½ घंटे में मंगल की एक परिक्रमा लगा आता है। दूसरे का नाम डाइमस (Deimos) है। इसका व्यास केवल पाँच कोस का है और यह मंगल से ७३०० कोस दूर है। यह ३०¼ घंटे में अपनी एक परिक्रमा पूरी करता है। ये दोनों उपग्रह छोटे छोटे कसबों या नगरों के बराबर हैं। इन से मंगल की रात्रियों में उतना प्रकाश न मिलता होगा जितना हमें चंद्रमा से मिलता है। मंगलवालों के आकाश में सूर्य्य और गुरु के पीछे पृथ्वी सब से प्रकाशमान् पिंड होगी। परंतु फोबस के कारण एक तमाशा रहता होगा। वह एक दिन रात में तीन तीन परिक्रमा पूरी करता है, और आकाश को तीन तीन बार पार करता है। कुछ घंटों के भीतर उसके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष समाप्त हो जाते हैं। निकट होने के कारण मंगल पर से उसका सारा पृष्ठ स्पष्ट देख पड़ता होगा। डाइमस भी अत्यंत स्पष्ट दीखता होगा। कहाँ चंद्रमा का ११९००० कोस और कहाँ डाइमस का ७३०० कोस! मंगल के उपग्रह उपयोग के लिये नहीं, शोभा के लिये हैं।

मंगल के संबंध में इतना ही वक्तव्य और शेष है कि

यद्यपि अब ज्योतिषियों के मत में बहुत परिवर्त्तन हो गया है फिर भी जितने चित्रपट बनते हैं उनमें नाम पहले की ही भाँति दिए जाते हैं। अब भी मंगल पर 'महाद्वीप' 'सागर' नदी आदि के ही नाम हैं। हिंदुओं को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि एक नहर का नाम 'गंगा' रक्खा गया है।

---

(८) अवांतर ग्रह ।

यद्यपि पृथ्वी से सादृश्य के कारण मंगल हमारे लिये बड़ा रोचक ग्रह है, पर सौरचक्र में अवांतर ग्रहों के समान भी कदाचित् ही कोई विचित्र पिंड होंगे। इनकी बड़ी संख्या और इनके छोटे घनफल दोनों ही इनको विलक्षण बतलाते हैं। बिना यंत्र के इनको देखना असंभव है, इसलिये आज से सौ वर्ष पहले इनको कोई जानता भी न था।

परंतु इनके अस्तित्व में विश्वास बहुत दिनों से चला आता है। ज्योतिषियों ने गणित कर के यह बात निकाली थी कि मंगल और बृहस्पति के बीच में कोई ग्रह होना चाहिए। यद्यपि वह गणित कठिन है, फिर भी इतनी रोचक है कि उस का दिग्दर्शन कराना आवश्यक प्रतीत होता है।

बोड (Bode) ने इस नियम की विवृत्ति की थी, इस लिये इसे बोड का सिद्धांत (Bode's Law) कहते हैं। "ग्रहों के परिक्रमण कालों के वर्गों में वही निष्पत्ति होती है जो उनकी दूरियों के घनों में होती है।" इस का अर्थ कठिन सा प्रतीत होता है, पर इस से एक उपसिद्धांत निकला हुआ है जो अत्यंत सरल और रोचक है। निम्न-लिखित अंकों को देखिए।

०, ३, ६, १२, २४, ४८, ९६ इत्यादि, इन में प्रत्येक अंक पहले वाले का दूना है। यदि इन सब में ४ जोड़ दिया जाय, तो आगे दिए हुए अंक मिलेंगे—

४, ७, १०, १६, २८, ५२, १०० इत्यादि।

अब बोड ने यह बात निकाली कि ग्रहों की दूरियों में आपस में वही निष्पत्ति है जो इन अंकों में है। यथा, बुध की दूरी १८१५५००० कोस और शुक्र की ३३६१८००० कोस है। यदि शुक्र की दूरी को बुध की दूरी से भाग दें तो वही लब्धि आयगी जो ७ को ४ से भाग देने में आती है। यही क्रम और ग्रहों के लिये भी देखा गया है। अत: एक एक संख्या के नीचे एक एक ग्रह का नाम लिखने से ये दो श्रेणियां बनी हैं —

४, ७, १०, १६, २८, ५२, १०० इत्यादि।
बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, , बृहस्पति, शनि इत्यादि।

मंगल और बृहस्पति के बीच में २८ के सामने का स्थान शून्य था। इस से यह अनुमान हुआ कि इन दोनों ग्रहों के बीच में कोई न कोई ग्रह अवश्य होगा।

पर बहुत दिनों तक इस ग्रह का अस्तित्व कल्पित ही रह गया। इसके दर्शन न हुए। सन् १८०१ की पहली जनवरी को (साल के पहले दिन) इटाली के पिआज़ी (Piazzi) नामक ज्योतिषी को एक छोटा सा पिंड देख पड़ा। दो बार दिन में देखने से यह बात निश्चित हो गई कि यह वही गृह है जिसकी खोज हो रही थी।' पिआज़ी इसको बराबर लगभग १½ महीने तक देखने के पीछे रुग्न हो गए और यह कुछ काल के लिये फिर अदृश्य हो गया। सन् १८०१ की ३१ दिसंबर को (साल के अंतिम दिन) यह फिर देख पड़ा और तब से इस समय तक बराबर ज्योतिषियों के निरीक्षण में रहा है। इस को सेरेस (Ceres) का नाम दिया गया है।

यद्यपि इस स्थान पर जितने बड़े ग्रह की अपेक्षा की जाती थी उस से सेरेस बहुत छोटा निकला पर ज्योतिषी लोग संतुष्ट हो गए, क्योंकि उनकी गणना सच्ची निकल आई।

परंतु थोड़े ही दिनों में एक बड़े आश्चर्य की बात हुई। आलबर्स (Olbers) नामक ज्योतिषी ने सेरेस के पास ही एक और छोटे से ग्रह को देखा। इसका नाम पैलास (Pallas) रक्खा गया। दो ही साल में एक तीसरा गृह देखा गया। इसका नाम जूनो (Juno) हुआ और इसके पाँच साल पीछे एक चौथा गृह वेस्टा (Vesta) देखा गया।

फिर जब आठ नौ वर्ष तक कोई नवीन गृह न मिला, तब लोगों ने इनकी खोज करना छोड़ दिया, पर १८४५ में हेंकी (Henke) नाम के जर्मन ज्योतिषी ने एक और गृह ढूँढ़ निकाला। इस का नाम ऐस्ट्रीआ (Astraea) पड़ा। हेंकी के जीवन के विषय में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि वे किसी समय एक साधारण पोस्ट-मास्टर थे परंतु उनके विद्यानुराग और ज्योतिष की अभिरुचि ने उनके नाम को अमर कर दिया। उस समय से ऐसा कोई साल ही नहीं गया जब कि एक या अधिक नए गृह न देखे गए हों। अकेले एक ज्योतिषी विएना निवासी पेलीसा (Palisa) ने ८० गृहों की विवृत्ति की। प्रसिद्ध ज्योतिषी हर्शल (Herschel) की बहन (Miss Herschel) कुमारी हर्शल ने भी इस काम में ख्याति उपार्जित की है। पहले तो इनकी खोज यंत्रों से होती थी परंतु अब दूरदर्शक यंत्रों के स्थान में बहुधा फोटो के कैमेरा से काम लेते हैं। छोटे से छोटे प्रकाश बिंदु

का प्रातिबिंब फोटो के प्लेट पर आ जाता है। तारे, जो कि स्थिर हैं बिंदु से आते हैं, और गृह, जो कि चल हैं पतली रेखाओं के रूप में देख पड़ते हैं।

इन सब युक्तियों से इस समय तक लगभग ५०० अवांतर ग्रह देखे जा चुके हैं। ये सब एक दूसरे के इतने सदृश हैं कि अब ज्योतिपियों को इनके लिये उतना उत्साह नहीं रहा जितना पहले था। इन सब में एक एरोस (Eros) निःसंदेह आश्चर्यजनक है क्यों कि वह औरों की भांति मंगल और बृहस्पति के बीच में नहीं घूमता प्रत्युत् मंगल के रास्ते को काट कर पृथ्वी के पास तक आता है। उस समय यह पृथ्वी से केवल ७५०००० कोस दूर रहता है। इससे ज्योतिपियों को कई गणनाओं में बड़ी सहायता मिली है।

इन सब के पृष्ठों के संबंध में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। किसी किसी में चट्टानों का अनुमान किया जाता है, पर वायु या जल का पता नहीं लगता और न यह कहा जा सकता है कि ये कितने दिनों में अक्षभ्रमण करते हैं। इनके घनफल का इसीसे अनुमान हो सकता है कि इनमें जो सब *से बड़ा है, अर्थात् सेरेस, उसका व्यास २५० कोस से कम* है। अधिकांश इनमें ऐसे हैं जिनका व्यास पाँच कोस के लगभग होगा। ऐसे बहुत कम हैं जिनका व्यास १५ कोस या उससे अधिक हो। ऐसे पिंडों पर किसी प्रकार के प्राणियों का होना एक प्रकार से असंभव है। यदि हों भी तो वे हम से इतने विलक्षण होंगे कि हम उनके जीवन-निर्वाह-क्रम का अनुमान भी नहीं कर सकते।

इन अवांतर ग्रहों के विषय में आल्बर्स ने, जिन्होंने पैलेस का पता लगाया था, यह मत उपस्थित किया था—किसी समय में मंगल और बृहस्पति के बीच में बोड के सिद्धांत के अनुसार एक ग्रह रहा होगा। परंतु उस पर किसी प्रकार की आकस्मिक आपत्ति आ पड़ी। या तो वह किसी अज्ञात पिंड से टकरा गया या उसमे ही भीतर से असाधारण ज्वालामौखिक उत्क्षेप हुआ होगा। किसी ऐसे ही कारण से यह फूट गया और उसके टूटने से बहुत से टुकड़े हो गए हैं। ये टुकड़े अब भी यथाशक्य उसके पुराने मार्ग पर या उसके पास चलते हैं।

यह मत ठीक हो या न हो पर अयुक्त नहीं प्रतीत होता और इसको मान लेने से कई बातें सरल हो जाती हैं। इसमें संदेह नहीं कि एरोस कुछ इसके विरुद्ध चलता है क्योंकि वह मंगल के मार्ग को काट कर भीतर चला जाता है। पर यह बात भी समझी जा सकती है। संभव है कि टूटते समय उसको कुछ ऐसा धक्का लगा हो या उस पर कोई ऐसा खिंचाव पड़ा हो कि उसका मार्ग प्राचीन ग्रह के मार्ग से बदल गया हो। इतना कह देना आवश्यक है कि आज कल ज्योतिषी लोग प्रायः इस मत को नहीं मानते। जो कुछ हो, इन ग्रहों की स्थिति अद्भुत है। इन्होंने सौर चक्र को दो पूर्णतया अलग और भेदयुत टुकड़ों में बाँट रक्खा है और जैसा कि (Macpherson) मैक्फ़र्सन कहते हैं "The existence in the solar system of this group of minute bodies all but innumerable, each pursuing

its *own* appointed path round the orb of day, is another example of the variety and harmony of nature." "सौर चक्र में इन असंख्यप्राय छोटे छोटे पिंडों का अस्तित्व, जिनमें से प्रत्येक सूर्य्य के चारों ओर अपने नियत मार्ग पर चलता रहता है, प्रकृति के नानात्व-युक्त साम्य का एक और उदाहरण है।

---

(९) वृहस्पति ।

जैसा कि सारणी (पृष्ठ ४९) को देखने से विदित होगा, ग्रहों में वृहस्पति सब से बड़ा है। पुराने यूनानी लोग इसको (या यों कहिए कि इसके अधिष्ठाता देवता को) ज्यूपिटर (Jupiter) के नाम से देवताओं का राजा मानते थे। हिंदुओं ने इसको (अर्थात् इसके अधिष्ठाता देवता को) राजा से भी बड़ी पदवी दी है। हम वृहस्पति को देवताओं का गुरु मानते हैं। यदि गुरु शब्द का अर्थ भारी लिया जाय तब भी यह नाम अत्यंत युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

देखने में गुरु का प्रकाश अत्यंत स्थिर, स्वच्छ और तीव्र होता है। सिवाय शुक्र के इतनी चमक और किसी ग्रह में नहीं है। वृहस्पति में वह कोमलता नहीं पाई जाती जो शुक्र में हैं। इस चमक के कारण उसको देखना और पहचानना भी बहुत सरल काम है। बड़ा होने के कारण छोटे से दूरदर्शक यंत्र से भी इसका पृष्ठ स्पष्ट दिखाई देता है। जब यह यंत्र पहले पहले बना था उस समय से ही इसके द्वारा वृहस्पति का अवलोकन हो रहा है और कई आश्चर्य-जनक बातों का पता लगा है। वस्तुतः इन बातों को देख कर फ्लैमेरिअन का निम्नलिखित वाक्य अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है—

"When Jupiter shines among the stars of the silent night,........., who would suppose,

while admiring this simple luminous point, that it is an enormous and massive globe, weighing over three hundred times more than the planet which we inhabit, and of which the colossal volume exceeds by nearly thirteen hundred times that of the earth ? We have our eyes fixed on him..............., but we do not guess the marvellous grandeur of this distant body." "जिस समय रात के सन्नाटे में बृहस्पति तारों के मध्य में चमकता है तो इस प्रकाशमान् बिंदु को देख कर किस को इस बात का संदेह होगा कि यह एक बृहत्काय और भारी गोला है जिसका तौल पृथ्वी के तौल से तीन सौ गुणा से भी अधिक है और जिसका घनफल पृथ्वी के घनफल से तेरह सौ गुणा से भी बढ़कर है। हमारी दृष्टि उस पर जमी रहती है पर हम इस दूरस्थ पिंड के विचित्र उत्कर्ष का अनुमान नहीं कर सकते।"

बृहस्पति को अक्षभ्रमण में १० घंटे के लगभग लगते हैं। हम सूर्य्य के विषय में कह आए हैं कि उसके भिन्न भिन्न भागों को अक्षभ्रमण में भिन्न भिन्न काल लगते हैं। ठीक यही दशा बृहस्पति की भी है। इसके भी सब भागों को एक ही समय नहीं लगता। कोई शीघ्र घूमता है, कोई देर में।

छोटे यंत्र से देखने से बृहस्पति के पृष्ठ पर कुछ समानांतर रेखाएँ इस प्रकार खिंची देख पड़ती हैं।
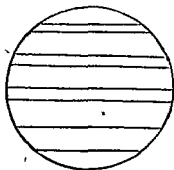
यदि अच्छा यंत्र हो तो एक ज्योतिषी के शब्दों में यह देख पड़ेगा कि belts of reddish clouds, many thousands of miles across, are stretched along on either side of the equator of the great planet; the equatorial belt itself brilliantly lemon-hued or sometimes ruddy, is diversified with white globular and balloon-shaped masses, which almost recall the appearance of summer cloud-domes hovering over a terrestrial landscape, while towards the poles shadowy surfaces of gradually deepening blue or blue grey suggest the comparative coolness of those regions which lie always under a low sun",

"इस बड़े गृह की मध्यरेखा के दोनों ओर सहस्रों कोस चौड़ी लाल रंग के बादलों की मेखलाएँ फैली हुई हैं; मध्य-मेखला स्वयं तीव्र नीबू के रंग की या कभी कभी लाल रंग की रहती है और उसके बीच बीच में श्वेत रंग के गोल और गुब्बारे की भाँति फूले हुए पिंड देख पड़ते हैं जिनको

देख कर उन बादलों की स्मृति होती है जो कभी कभी गर्मी में (या बर्सात में ?) पृथ्वी के किसी प्रांत विशेष पर घिर आते हैं। दोनों ध्रुवों की ओर लंबे चौड़े छायायुक्त मैदान पड़े हैं जिनका रंग क्रमशः गहरा आसमानी या भूरा आसमानी होता गया है। इनको देखने से यह प्रतीत होता है कि ये देश जिन पर कि सूर्य्य सामने नहीं पड़ता बीच के देशों से ठंढे हैं।"

इन थोड़े से शब्दों में इस ज्योतिषी ने वस्तुत. बृहस्पति का बहुत सा वृत्तांत कह दिया है। जो बादल चारों ओर से इस गृह को घेरे हुए हैं वे अत्यंत घने हैं। इनके भीतर से बृहस्पति के पृष्ठ का कुछ पता नहीं लगता और न बृहस्पति पर से ही कुछ बाहर का दृश्य देख पड़ता होगा। बादल होने के कारण ये मेखलाएँ निश्चल नहीं रहतीं, परंतु जिस भाँति पार्थिव बादल थोड़ी देर में अदृश्य हो जाते हैं, उस प्रकार ये नहीं होते। इन में जो परिवर्तन होते हैं उन में समय लगता है।

बादलों के अतिरिक्त बृहस्पति के पृष्ठ पर एक और आश्चर्य्यजनक वस्तु है, उसे 'विशाल रक्तवर्ण बिंदु' कहते हैं। पहले पहल यह सन् १८७८ में देखा गया। उस समय यह हलका गुलाबी था, धीरे धीरे उसका रंग गहरा होता गया और उसका क्षेत्रफल बढ़ते बढ़ते ५००००००० वर्ग कोस हो गया। फिर वह छोटा और धुँधला होने लगा और सन् १८८३ में लुप्तप्राय हो गया। परंतु वह फिर बड़ा और गहरे रंग का होने लगा और यद्यपि एक बार बीच में फिर कम हो गया था,

पर आज कल पुनः भली भाँति देख पड़ता है। एक ज्योतिषी का यह मत है कि जिस जगह यह लाल बिंदु देख पड़ता है वह बादलों से शून्य है। यह लाल वर्ण या तो उन घने वाष्पों का है जो बादलों के नीचे हैं या ग्रह का शुद्ध पृष्ठ है। उसके रंग बदलने और छोटे बड़े होने का कारण यह है कि उसके पास कभी कभी बादल आ जाते हैं और फिर हट जाते हैं। जहाँ तक समझ में आता है यह वाष्पसमूह ही है, वृहस्पति का पृष्ठ नहीं है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए ज्योतिषियों ने यह सम्मति स्थिर की है कि वृहस्पति की परिस्थिति पृथ्वी, मंगल आदि जितने प्रधान ग्रहों को हम देख आए हैं सब से भिन्न है। इन सभों में कोई तो मृत् जगत् है, कोई वृद्ध जगत् है, कोई युवा जगत् है। परंतु वृहस्पति अभी बालक जगत् है। अभी वह उस अवस्था तक भी नहीं पहुँचा जो पृथ्वी की है। अभी इसमें उसको करोड़ों वर्ष लगेंगे, उसकी वर्त्तमान अवस्था सूर्य्य से कुछ मिलती जुलती है। यद्यपि अब वह स्वय प्रकाशमान् पिंड नहीं है प्रत्युत् सूर्य्य के प्रकाश से ही चमकता है परंतु ताप उसमें से अब भी निकलता होगा। उसका तल पृथ्वी के समान ठोस नहीं है। उसके भिन्न भिन्न भागों के भिन्न भिन्न अक्षभ्रमण कालों से भी यह बात प्रतीत होती है। उसने कदाचित् ठोस होना आरंभ किया होगा। नाना प्रकार के वाष्पों (gases) के मिश्रण से बना हुआ एक घना वायुमंडल उसको घेरे हुए है। बादलों में से दिन रात धुआँधार वर्षा होती होगी, पर गर्मी के कारण यह जल

समुद्र रूप से ठहर नहीं सकता। उसी क्षण भाप बन कर उड़ जाता होगा और नए बादल बन जाते होंगे । ज्वालामौखिक उत्क्षेप निरंतर ही होते होंगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि यह स्थिति पृथ्वी से प्रत्यक्ष देखी नहीं जा सकती, किंतु अनुमित है। आगे चल कर एक अध्याय में इस विषय पर फिर विचार होगा।

जिस प्रकार बृहस्पति पृथ्वी से अन्य बातों में बढ़ा हुआ है, उसी भाँति वह हमसे अपने उपग्रहों की संख्या में भी बढ़ कर है। उसके साथ कम से कम ८ उपग्रह या 'चंद्र' हैं। इनमें से चार को तीन सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध ज्योतिषी गैलिलिओ (Galileo) ने देखा था। इनमें से तृतीय और चतुर्थ को कोई कोई अत्यंत तीव्र दृष्टि के मनुष्य बिना यंत्र के भी देख सकते हैं । ये बृहस्पति के पास अति छोटे तारे से दीखते हैं । जिस समय गैलिलिओ ने इनको देखा था उस समय दूरदर्शक यंत्र नया ही बना था। बहुत से लोगों को उसमें विश्वास न था और अधिकांश लोगों का यह मत था कि उस समय जितने पिंड ज्ञात थे उनसे अधिक हो ही नहीं सकते थे। इसीलिये एक ज्योतिषी ने इनको देख कर यह कहा कि ये आकाश में नहीं हैं प्रत्युत यंत्र में भ्रम से देख पड़ते हैं और दूसरे ने यंत्र को इस भय से आँख से लगाया ही नहीं कि कदाचित् उसे ये उपग्रह दीख जायँ और उसे अपना चिर संपादित विचार (यद्यपि वह असत्य था) परिवर्त्तन करना पड़े!

पहला उपग्रह बृहस्पति से १३०५०० कोस दूर है और लगभग १½ दिनों में उसकी परिक्रमा करता है। उसका व्यास

१२५० कोस का है। तृतीय उपग्रह गैनिमीड (Ganymede) चारों में बड़ा है। उसका व्यास १७७५ कोस का है। आठवाँ उपग्रह जो अत्यंत छोटा है १५००००० कोस से अधिक दूर है और उसको परिक्रमा करने के लिये २५० दिन से अधिक लगते हैं। इसमें विलक्षण बात यह है कि हमने अभी तक जितने ग्रह और उपग्रह देखे हैं यह उनकी भांति पश्चिम से पूर्व को नहीं जाता प्रत्युत् पूर्व से पश्चिम को जाता है। पहले चारों की अपेक्षा पिछले चार बहुत छोटे हैं। पंचम उपग्रह का जो सब से छोटा है, व्यास ५० कोस से कुछ ही अधिक है।

इन उपग्रहों का और बृहस्पति का संबंध ठीक चंद्रमा और पृथ्वी का सा नहीं है। चंद्रमा को पृथ्वी से एक प्रधान लाभ यही होता है कि सूर्य्य का प्रकाश पृथ्वी से परावृत्त हो कर चंद्रमा पर पड़ता है। इस प्रकाश का भी बहुत सा अंश हमारा वायुमंडल रोक लेता है। परंतु बृहस्पति पर बादल हैं। इस लिये सूर्य्य के प्रकाश का अधिकांश ज्यों का त्यों परावृत हो कर उसके उपग्रहों को मिलता होगा। यदि बृहस्पति उनको अपने पास से प्रकाश नहीं दे सकता तो ताप तो अवश्य ही पहुँचाता होगा। सूर्य्य से दूर होने के कष्टों की बहुत कुछ निवृत्ति बृहस्पति के सान्निध्य से हो जाती होगी।

बृहस्पति पर जीवधारियों का होना असंभव सा प्रतीत होता है; कम से कम, हम पृथ्वीवासी ऐसे जीवों से परिचित नहीं हैं। मुसलमानों का विश्वास है कि एक प्रकार का जीव-विशेष समंदर होता है, जो सैकड़ों वर्ष तक आग में रह सकता है। यदि बृहस्पति में कोई प्राणी होंगे तो उनके कुछ गुण

इस समंदर से अवश्य मिलते होंगे। परंतु उसके उपग्रहों पर, विशेषतः पहले चार पर, जीवों का होना संभव है। इनमें से तीन हमारे चंद्रमा से बड़े हैं। खेद की बात यह है कि दूरी के कारण बड़े से बड़े यंत्रों से भी इनके पृष्ठों की अवस्था का कुछ पता नहीं चलता। इतनी दूरी पर चंद्रमा से बड़े होने पर भी इनके पृष्ट स्पष्ट नहीं देख पड़ते।

वृहस्पति से आकाश का दृश्य लगभग वही होगा जो पृथ्वी से है, परंतु जिस प्रकार हम यहाँ से बुध को भली भांति नहीं देख सकते उसी प्रकार वृहस्पति से पृथ्वी को देखना कठिन होता होगा, क्योंकि यह भी वहाँ सूर्योदय सूर्यास्त के समय क्षितिज के पास ही रहती होगी। जो स्थान हमारे यहाँ शुक्र का है, उसीके सदृश वहाँ मंगल का स्थान होगा परंतु उसके उपग्रहों की शोभा की तुलना (यद्यपि उनमें प्रकाश चंद्रमा से बहुत कम होगा) हम ठीक ठीक नहीं कर सकते।

---

(१०) शनि ।

प्राचीन काल के ज्योतिषियों के लिये, जिनको यंत्रों की सहायता नहीं मिल सकती थी, शनि हमारे सौरचक्र का अंतिम ग्रह था। राहु और केतु जिनको फलित ज्योतिष में ग्रह का नाम दिया गया है, वस्तुतः स्वतंत्र पिंड नहीं है। ये संपात (modes) हैं।

फलित ज्योतिष में शनि बहुत क्रूर ग्रह माना गया है। इसकी दृष्टि का फल प्रायः बुरा होता है। जिस किसी के सिर साढ़े साती सनीचर लगते हैं उसकी दुर्दशा हो जाती है। न जाने कितना दान पुन्य देकर विचारे के प्राण छूटते हैं।

फलित ज्योतिष सच हो या झूठ, पर जो लोग उसमें विश्वास नहीं करते उनको भी शनि की ओर बिना यंत्र के देखने से कोई विशेष प्रसन्नता नहीं होती। न तो उसका रग ही मंगल की भाँति उम्र है और न उसका प्रकाश बृहस्पति की भाँति तीव्र या शुक्र की भाँति मधुर है। उसकी गति भी बड़ी ही धीमी है। तीस वर्ष में वह सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी करता है। इसीलिये उसे संस्कृत में 'शनैश्चर' 'धीरे चलनेवाला' कहते हैं। यदि उसकी गति की ओर ध्यान न दिया जाय तो वह एक अधिक चमकीला तारा सा प्रतीत, होगा। यह प्राचीन ज्योतिषियों के लिये प्रशंसा की बात है कि उन्होंने इसे पहचान लिया और इसके संबंध में कई ठीक ठीक गणनाएँ भी कर लीं।

परंतु दूरदर्शक यंत्र से देखने से यह उदासीनता का भाव जाता रहता है। उस समय इसके बराबर रोचक सौर-चक्र भर में कोई दूसरा ग्रह नहीं मिलता। जिसने वृहस्पति का वर्णन पढ़ा होगा वह आश्चर्य्य में पड़ गया होगा, परंतु शनि के सामने वृहस्पति भी हार जाता है। जैसा कि एक ज्योतिषी का कथन है—It is absolutely unique in the solar system, and so for as is known, in the universe" "वह सौरचक्र में और जहाँ तक ज्ञात है समस्त विश्व मे एकमात्र अद्वितीय है।"

यंत्र से देखने से उसके पृष्ठ पर भी वृहस्पति के समान मेखलाएँ देख पड़ती हैं। पर सब से विचित्र बात यह है कि यह ग्रह एक वलय (अँगूठी) से घिरा हुआ प्रतीत होता है। अच्छे यंत्र से देखने पर एक की जगह तीन वलय देख पड़ते हैं। सब से नीचे वाले का रंग कुछ धुँधला है, शेष दोनों का प्रदीप्त है।
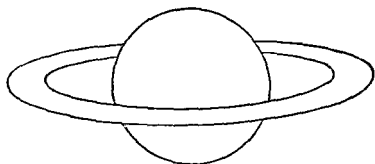
इन वलयों को सब से पहले गेलिलिओ ने देखा था, परंतु उनकी समझ में यह बात न आई कि ये क्या हैं? पहले

उनको यह ग्रह अंडाकार देख पड़ा, जिस से उन्होंने यह अनुमान किया कि मुख्य ग्रह के दोनों ओर दो छोटे छोटे ग्रह और हैं। कुछ काल के उपरांत उन्होंने यह समझा कि तीन ग्रह नहीं हैं किंतु शनि वस्तुतः गोल नहीं प्रत्युत् अंडाकार है। दो वर्षों में ग्रह फिर गोल हो गया। इस बात ने गेलिलियो को बड़ा दुःखित किया। वे यह न समझ सके कि यह उनका चक्षुदोष था, या उनके यंत्रों का, या कोई और ही बात थी; किंतु खिन्न हो कर उन्होंने शनि को देखना ही छोड़ दिया। सीधी बात यह है कि सूर्य्य की परिक्रमा करते करते शनि कभी ऐसे स्थान पर आ जाता है कि वलयत्रय सामने देख पड़ते हैं और कभी तिरछे पड़ जाने से अदृष्टप्राय हो जाते हैं। परंतु गेलिलिओ इस बात से परिचित न थे और जैसा कि उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा था, वे अत्यंत घबरा गए थे।

इस बात का समुचित निर्णय हाइगेंस ने किया। उनके पास गेलिलिओ की अपेक्षा प्रबल यंत्र थे और उनको थोड़े ही दिनों में इस बात का निश्चय हो गया कि शनि एक वलय (उस समय तक एक ही देखा गया था। आज कल के यंत्रों ने उसके अंतर्गत दो और दिखलाए हैं) से घिरा हुआ है। परंतु वे अपने निश्चय को और दृढ़ करना चाहते थे। उस समय एक विचित्र प्रथा थी। यदि कोई वैज्ञानिक कोई सिद्धांत उपस्थित करता और पीछे से उसमें कोई भूल पड़ती तो उसकी अप्रतिष्ठा होती। इस डर के मारे कोई अपरिपक्व बात न कहता था। पर साथ ही यह डर भी

लगा रहता था कि कहीं जब तक मैं अपने निश्चय को दृढ़ करूँ कोई और व्यक्ति इसे ढूँढ़ निकाले और उसका नाम हो जाय। इसलिये लोग अपनी विवृत्ति को स्पष्ट शब्दों में न लिख कर वाक्यों को तोड़ कर एक प्रकार का कूट बनाते थे। यदि बात ठीक हो गई तो उस कूट का अर्थ समझा देते थे नहीं तो रहने देते। जैसे मान लीजिए कि किसी ने मंगल पर मनुष्य देखे, पर अभी वह इस निश्चय को दृढ़ करना चाहता है, तो वह संस्कृत में (इस लिये कि यूरोप के लोग लेटिन में लिखते थे) यह वाक्य लिखेगा 'मया मङ्गले मनुष्या दृष्टा' 'मेरे द्वारा मंगल में मनुष्य देख गए' पर वह इस वाक्य को छपवाने के पहले उसे वर्णमाला के क्रम से अक्षरों में तोड़ देगा। छपने पर इस वाक्य का रूप यह होगा–

ग, ङ्, टा, द, नु, ममम, याया, ले, ष्ष्।

यदि वह चाहे तो मात्राओं के स्वरों को अलग करके इस कूट को और क्लिष्ट कर सकता है। यदि कुछ काल के पीछे उसका अनुभव जांच करने पर ठीक निकला तो वह सबको उसका अर्थ समझा देगा और यदि बीच में कोई और इस बात को निकाले तो वह कह सकता है कि मैंने यह बात पहले ही कूट रूप से कह दी थी।

"इसी प्रथा के अनुसार सन् १६५६ में हाइगेंस ने यह कूट प्रकाशित किया–aaaaaaa, ccccc, d, eeeee, g, h, iiiiii, llll, mm, nnnnnnnnn, oooo, pp, q, rr s, tttt, uuuuu." तीन वर्ष की जाँच के उपरांत उनको निश्चय हो गया कि उनका सिद्धांत ठीक था और तब उन्होंने अक्षरों को

ठीक क्रम से बिठा कर यह वाक्य बना कर प्रकाशित किया—

"Annulo cingitur tenui plano nusquam cohaerante ad eclipticum inclinato"

यह बात लेटिन भाषा में है। इसका अर्थ यह है "यह ग्रह एक पतले चपटे वलय से घिरा हुआ है जो क्रांति-वृत्त से कोण बनाता है और ग्रह से कहीं लगा हुआ नहीं है अर्थात् चारों ओर से दूर है।

जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ अब यह निश्चय हो गया है कि एक दूसरे के भीतर सब तीन वलय हैं, एक नहीं। इन वलयों के विषय में पहले यह अनुमान था कि ये ठोस मुद्रिकाकार पिंड हैं पर अब यह निश्चय हो गया है कि एक एक वलय असंख्य पिंडों का बना हुआ है। असंख्य उपग्रह इतने पास पास आ गए हैं कि ये एक मिले हुए वलय से प्रतीत होते हैं। वस्तुतः सब अलग अलग शनि की परिक्रमा कर रहे हैं। शनि के मध्य भाग में ये ठीक सिर पर देख पड़ते होंगे। आकाश में एक क्षितिज से दूसरी तक एक तोरण (मेहराब) सा देख पड़ता होगा। उसके ध्रुवों से इसके दर्शन भी न होते होंगे। वलयों के बीच बीच में आकाश देख पड़ता होगा। एक ज्योतिषी का कथन है कि शनि से देखने से वलय के ठीक बीच का भाग (अर्थात् वह जो सिर के ऊपर होता होगा) शून्य सा रहता होगा। इसका कारण यह है कि वहाँ पर शनि की परछाईं पड़ती होगी। परंतु इस शून्य स्थल में और आकाश में यह भेद रहता होगा कि इसमें तारों का अभाव होगा।

परंतु यह दृश्य गर्मी का है जब कि वलयत्रय बड़े सुहावने से प्रतीत होंगे। सर्दी के दिनों में इनसे हानि भी होती होगी। ये सूर्य्य के प्रकाश को और ताप को बहुत कुछ रोक लेते होंगे। एक तो शनि सूर्य्य से दूर है दूसरे सर्दी में सूर्य्य दक्षिणायन रहते होंगे। इस पर भी जो कुछ थोड़ी बहुत गर्मी या प्रभा पहुँचती होगी उसका अधिकांश ये लुप्त कर देते हैं। इनके कारण सूर्य्यग्रहण भी बहुत हुआ करता होगा। उसके जो भाग मध्य रेखा और ध्रुव के बीच में हैं उनमें कभी कभी हमारे पाँच पाँच वर्ष के बराबर ग्रहण लगा रहता होगा।

शनि का पृष्ठ भी वृहस्पति के सदृश है। वह भी बादलों से घिरा रहता है और उसका वायुमंडल भी अत्यंत घना है। संभवतः उसकी दशा भी वैसी ही होगी जैसी वृहस्पति की है। उसके ठोस न होने का एक प्रमाण यह है कि वह अत्यंत हलका है। घनफल में पृथ्वी से ७०० गुणा भारी होते हुए भी वह तौल मे कुल ९० गुण भारी है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व लकड़ी के बराबर है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यदि कोई समुद्र इतना बड़ा हो कि उसमें सब गृह छोड़े जा सकें तो और सब तो पानी में डूब जाँयगे पर शनि तैरता रहेगा।

इसको अक्षभ्रमण में लगभग १०½ घंटे लगते हैं जो इतने बड़े पिंड के लिये एक अपेक्षातीत बात है।

शनि के साथ जहाँ तक ज्ञात है १० उपगृह हैं, जिनमें से एक टाइटन (Titan) बुध से बड़ा है। *शनि का अंतिम*

उपग्रह फीब (Phobe) बृहस्पति के अंतिम उपग्रह की भाँति उल्टा चलता है अर्थात् पूर्व से पश्चिम को घूमता है।

जो दशा ऊपर दिखलाई गई है उससे शनि में जीवों का होना असंभव सा प्रतीत होता है परंतु इसके चंद्रमाओं में विशेषतः टाइटन में प्राणी हो सकते हैं। शनि से आकाश का दृश्य वलयों के कारण अत्यंत विलक्षण होगा। उसके दस उपग्रहों ने इस विलक्षणता को और भी द्विगुणित कर रक्खा होगा। कभी एक, कभी दो, कभी दसों आकाश में उदय होते होंगे और वलयों के भीतर बाहर घूमते होंगे। एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने लिखा है कि—"शनि से वलयों के बीच में चलते हुए चंद्र 'Pearls strung on a silver thread' रुपहले तागे में गूँथे हुए मोतियों के समान देख पड़ते होंगे।"

बृहस्पति और शनि दोनों के मार्ग हमारे क्रांतिवृत्त के बाहर हैं। इसलिये पृथ्वी से देखने में आकाश में ये विचित्र चाल से चलते प्रतीत होते हैं। ये सूर्योदय के कुछ पहले पूर्व में देख पड़ते हैं। नित्य प्रति ये कुछ पहले उदय होने लगते हैं यहाँ तक कि सारी रात देख पड़ने लगते हैं। पर इस उदयकाल के हेर फेर के साथ साथ एक और बात भी होती है। पहले ये आकाश में पश्चिम से पूर्व को जाते दिखाई देते हैं, फिर कुछ दूर चल कर रुक जाते हैं और फिर पश्चिम को चलने लगते हैं तथा फिर कुछ दिन के पीछे पूर्व को लौट पड़ते हैं।
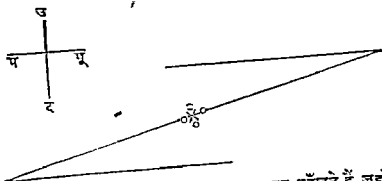
जिस समय शनि या गुरु उस स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ पर कि चित्र में '⁂' यह चिहं बना हुआ है तो वह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य्य के ठीक सामने होते हैं। इस स्थान को पूर्ण गुरु या पूर्ण शनि का स्थान कह सकते हैं। यहं स्थान पूर्व से पश्चिमवाली रेखा के बीच में पड़ता है। वृहस्पति को इस रेखा को पूरी करने में १२२ दिन और शनि को १४३ दिन लगते हैं।

---

(११) युरेनस और नेपचून।

शनि के साथ हम उस सीमा तक पहुँच गए जहाँ तक पुराने ज्योतिषी पहुँच सके थे। उनके लिये सौरचक्र शनि पर समाप्त हो गया था। इसके आगे उनको पता नहीं लगा। इसका मुख्य कारण यह है कि नेपचून तो बिना यंत्र के देखा जा सकता ही नहीं और युरेनस को भी कदाचित् सहस्रों में एक मनुष्य देख सकेगा।

बुध, शुक्र, शनि आदि ग्रहों की विज्ञप्ति का समय नियत नहीं किया जा सकता। यह कोई नहीं कह सकता कि इनमें से किस ग्रह को पहले किस देश के किस मनुष्य ने किस दिन देखा था। जहाँ तक पता लगता है, प्राचीन काल के सभी ज्योतिषी इन्हें जानते थे। पर शनि के देखे जाने के पीछे नवीन विज्ञप्तियों की श्रेणी बंद हो गई। सहस्रों (या लाखों ?) वर्ष तक किसी ने किसी नए पिंड का पता न पाया।

सन् १७८१ में वह द्वार फिर खुला और हमारा अपने परिवार के एक व्यक्ति से परिचय हुआ। जहाँ तक समझ में आता है प्राचीन काल में और गृह भी इसी प्रकार देखे और पहिचाने गए होंगे।

सन् १७८१ के १३ मार्च की रात को सर विलियम हर्शल मिथुन राशि के तारों की ओर देख रहे थे कि उनकी दृष्टि एक तारे पर पड़ी जो औरों से कुछ बड़ा और चमकीला प्रतीत हुआ,

यह स्मरण रहे कि वे यंत्र से देख रहे थे। दूसरे दिन जो उन्होंने देखा तो वह पहले स्थान से कुछ टल गया था। दो तीन दिनों में यह बात निश्चित हो गई कि वह अन्य तारों की भाँति स्थिर नहीं प्रत्युत चल पिंड है। यह तो किसी को स्वप्न में भी विचार नहीं हो सकता था कि शनि के अतिरिक्त किसी और ग्रह का होना भी संभव है, इसलिये पहले यही समझा गया कि यह कोई केतु होगा। पर जब इसकी गति की गणना की गई तो यह बात स्पष्ट हो गई यह पिंड केतु नहीं प्रत्युत् ग्रह है।

इस समाचार ने शिक्षित जगत् को आश्चर्य में डाल दिया। वस्तुतः हर्शल ने एक ऐसा काम किया जो संभावना की सीमा के बाहर माना जाता था। सौरचक्र का विस्तार एक छलाँग में दूना हो गया क्योंकि शनि सूर्य्य से ४४ करोड़ कोस से कुछ ऊपर दूर है और युरेनस उससे एक करोड़ कोस से अधिक दूरी पर है।

इसकी विज्ञप्ति के पीछे पता लगा कि पिछले वर्षों में कई ज्योतिषीयों ने इसे भिन्न भिन्न स्थानों में देखा था पर यश तो हर्शल को मिलना था। सब ने इसे तारा समझ कर छोड़ दिया था।

युरेनस के पृष्ठ के विषय में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। उस पर भी बृहस्पति और शनि की सी मेखलाएँ प्रतीत होती हैं और रश्मिविश्लेषक की सहायता से यह भी पता चलता है कि वह अत्यंत गर्म है, यहाँ तक कि जल उस पर भाप की अवस्था में भी नहीं ठहर सकता, प्रत्युत

अपने अवयवों में टूट जाता है और हाइड्रोजन और आक्सिजन गेस के परमाणु रह जाते हैं। कुछ ज्योतिषियों का यह मत है कि १० घंटे में यह अक्षभ्रमण करता है पर अभी यह बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।

इसके साथ चार उपग्रह हैं। इनमें पहला एरियल (Ariel) युरेनस से ६२००० कोस दूर है और २½ दिन में उसकी परिक्रमा करता है और चौथा जो १९०५०० कोस दूर है एक परिक्रमा में लगभग १३½ दिन लगाता है। इनके विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात न हो सका है पर जहाँ तक अनुमान होता है इनकी दशा भी गुरु और शनि के उपग्रहों की सी होगी।

ऊपर लिखा गया है कि युरेनस की विवृत्ति ने लोगों को आश्चर्य्य में डाल दिया। यह बात अक्षरशः सत्य है पर नेपचून की विवृत्ति के सामने वह एक हँसी खेल था। युरेनस के विषय मे हर्शेल की बुद्धि के साथ साथ बहुत कुछ काम उनके प्रारब्ध और तीव्रदर्शी यंत्र ने किया। उसका दिखाई देना एक प्रकार की आकस्मिक बात थी। कोई और व्यक्ति भी उस प्रकार के यंत्रों को ले कर सावधानी से बैठता तो संभव था कि उसे युरेनस का पता लग जाता। पर नेपचू के विषय में यंत्रों का कृत्य अति अल्प था। उसको किसी यंत्र ने नहीं प्रत्युत् मनुष्य के बुद्धिबल, दिव्य मस्तिष्क बल ने उसके अज्ञातवास से ढूँढ़ निकाला।

जब युरेनस की विवृति हुई तो ज्योतिषियों ने उसके विषय में गणनाएँ करके उसका मार्ग निश्चित किया। पर

जिसमें नौ अज्ञात संख्याएँ थीं। दो वर्ष में गणना पूरी हुई। सन् १८४५ की २१ अक्तूबर को वे एक काग़ज़ लंडन के प्रसिद्ध वेधालय ग्रीनिच में छोड़ आए जिस में कुल गणना दी हुई थी। पर पहले तो वहाँ किसी ने इस ओर ध्यान ही न दिया और पीछे से जब प्रयत्न किया भी गया तो वह निष्फल गया क्योंकि जिस ओर ऐडम्स ने इंगित किया था आकाश के उस दिग्विभाग का उन लोगों के पास कोई चित्रपट ही न था जिससे कि वे गृह और तारे में पहचान कर सकते।

उन्हीं दिनों फ्रांस के लेवेरिए भी इसी गणना में लगे हुए थे। जब उनका काम समाप्त हो गया तो उन्होंने बर्लिन वेधालय के अधिष्ठाता एन्की के पास सारा ब्योरा लिख भेजा। जर्मनी में तारों के नए चित्रपट थे, उनकी सहायता से जिस स्थान मे लेवेरिए ने बताया था दो ही तीन घंटों के भीतर एक नया तारा दीख पड़ा और शीघ्र ही युरेनस की गति को व्यतिक्रांत करनेवाला पिंड पहचान लिया गया। लेवेरिए के कहने से ही इसका नाम नेपचून रक्खा गया।

इसकी विवृत्ति गणित के निर्भ्रम और निर्दोष होने का एक समुज्वल, उदाहरण है और मनुष्य की समुपयुक्त बुद्धि की विलक्षण गति की सूचक है।

कुछ दिनों तक यह विवाद चलता रहा कि इस विवृत्ति के लिये यश का अधिकारी कौन है? ऐडम्स या लेवेरिए। अंग्रेज लोग ऐडम्स का पक्ष लेते थे और फ्रांसवाले लेवेरिए का।

पर अंत में झगड़ा मिट गया। आज कल सभी निष्पक्ष मनुष्य दोनों को तुल्य प्रशंसा का अधिकारी मानते हैं।

नेपचून के पृष्ठ के विषय में युरेनस से भी कम बातें ज्ञात हैं, पर जहाँ तक पता लगता है दोनों की दशा प्रायः एक ही सी है। वह भी वैसा ही गर्म और घने वायुमंडल से घिरा हुआ है जिस में बहुत सी वाष्पें (gases) हैं। कतिपय ज्योतिषियों का यह मत है कि यह आठ घंटे में अक्षभ्रमण करता है।

उसके साथ जहाँ तक ज्ञात है, एक उपगृह है। यह नेपचून की विवृत्ति के एक पक्ष के भीतर ही देखा गया। यह उस से १११५०० कोस दूर है और ५ दिन २१ घंटे ८ मिनट में ग्रह की एक परिक्रमा पूरी करता होगा। ऐसा अनुमान है कि वह बहुत बड़ा है, नहीं तो यहाँ से इतना स्पष्ट न देख पड़ता। कुछ लोगों का विश्वास है कि हमारे सौरचक्र में इससे बड़ा कोई उपगृह है ही नहीं। यह भी नेपचून की परिक्रमा उल्टी रीति (पूर्व से पश्चिम) से करता है। युरेनस और नेपचून में प्राणी हैं कि नहीं, इस प्रश्न का उठाना ही व्यर्थ है क्योंकि पहले तो अनुमान होता है कि वहाँ जीवधारी हो ही नहीं सकते और दूसरे यदि हों भी तो हम इसका कुछ निर्णय नहीं कर सकते।

यहाँ पर आ कर आधुनिक ज्योतिष ने सौरचक्र की सीमा बाँध दी है। पर संभव है कि शनि पर ही रुकनेवाली प्राचीन सीमा की भाँति यह भी कल्पित हो। यह कौन कह सकता है कि नेपचून के भी आगे और गृह नहीं हैं? सूर्य्य के सेवकों की श्रेणी को यहीं पर समाप्त मान लेना भूल है। यह बहुत

संभव है कि नेपचून के आगे भी ग्रह हों, जिनको हम दूरी के कारण न देख सकते हों। यदि ऐसे ग्रह हैं, तो वे इतनी दूर हैं कि वे किसी अन्य पिंड पर अपना प्रभाव डाल कर अपना अस्तित्व उस भाँति सूचित नहीं कर सकते जिस भाँति स्वयं नेपचून करता है।

---

(१२) आकाश के परिव्राजक।

'परिव्राजक' शब्द संन्यासियों के लिये प्रयुक्त होता है, इसलिये उसको किसी प्रकार के जड़ पिंडों के लिये काम में लाना एक प्रकार से धर्म्मभ्रष्टता का दोषी होना है। पर यहाँ मैंने कोई और समुचित शब्द न पा कर इसका प्रयोग किया है; पूज्य संन्यासिगण की गौरवहानि के उद्देश्य से नहीं।

परिव्राजकों में दो शारीरिक गुण होते हैं। एक तो वे बराबर पर्य्यटन करते रहते हैं। कहीं एक दिन से अधिक नहीं ठहरते। इसीलिये वे 'अतिथि' कहलाते हैं। यह गुण सभी आकाशस्थ पिंडों में अत्युदार रूप से पाया जाता है। वे सब निरंतर चलते हैं। नारद जी तो एक स्थान में दो घड़ी ठहर जाते थे। ये बिचारे कहीं कभी एक क्षण के लिये भी नहीं ठहरते वरन् सदैव अपने अपने नियत मार्गों पर चलते रहते हैं।

इस गुण की दृष्टि से पिंडों में पारस्परिक विशेषता नहीं है। सब एक से हैं। पर परिव्राजक का एक और गुण होता है-अपरिग्रह या त्याग। श्रेष्ठ संन्यासी के पास सिवाय अपने शरीर और अत्यावश्यक कमंडलु इत्यादि के और कोई सामग्री न होनी चाहिए, और न उसके साथ कोई दूसरा व्यक्ति होना चाहिए क्योंकि एकांतसेवी होना उसका प्रधान कर्तव्य है। इस परीक्षा में बहुत कम पिंड ठहर सकते हैं। तारों के साथ गृह हैं, गृहों के साथ उपगृह हैं। इन जगतों के साथ नदी, पर्वत, सागर, बादल, वायुमंडल, वृक्ष, पशु,

पक्षी, मनुष्य आदि अनंत सामग्रियाँ हैं, इसलिये ये इस विषय में ये निपट ससारी हैं।

पर इस अध्याय में जिन पिंडों का वर्णन होगा उन में दोनों गुण वर्त्तमान हैं(और वे भी बड़े उत्कृष्ट रूप से। यदि इस में कोई पाप न हो तो हम यह कह सकते हैं कि भारत में लाखों ऐसे साधु वेषधारी मनुष्य हैं जिनको चाहिए कि वे इन पिंडों को इन बातों में अपना गुरु मान लें। ऐसा करने से वे भगवान् दत्तात्रेय के मार्ग का अवलंबन करके अपने जीवन को पवित्र बना सकेंगे।

हम ने परिव्राजक की पदवी केतुओं (पुच्छल तारों, झाड़ू तारा=केतु) को दी है। एक समय था जब कि लोग इन पिंडों को देख कर डर जाया करते थे। अब भी ससार के सभी देशों में लाखों ऐसे मनुष्य हैं जिनका विश्वास है कि जब केतु उदय होता है तो ससार में कोई न कोई दुर्घटना अवश्य होती है। मैं नहीं कह सकता कि फलित ज्योतिष की इस विषय में क्या सम्मति है? पर अब वह समय गया जब दस बीस वर्ष में कहीं एक केतु देख पड़ जाया करता था। अब तो यन्त्रों की सहायता से प्रति वर्ष बहुत से केतु देख पड़ते हैं। इनके प्रभाव से क्या क्या घटनाएँ होती हैं यह कहना कठिन है।

पर ऐसा कदाचित् ही कोई व्यक्ति होगा जो इनको देख कर आश्चर्य से न भर जाता हो। विद्वान् और मूर्ख सभी इस दृश्यविषय को देख कर स्तब्ध रह जाते हैं और इसके अतुल सौंदर्य और महत्ता से मुग्ध हो जाते हैं।

केतुओं में प्रायः तीन भाग होते हैं—एक तो उनके सिर के बीचो बीच का घना भाग जिसको केतुनाभि (Nucleus) कहते हैं, दूसरे उसके चारों ओर का उससे देखने में हलका भाग, जिसको नाभ्यावरण (Coma) कहते हैं और तीसरा वह दूर तक फैला हुआ भाग जिसे पुच्छ (Tail) कहते हैं। प्रायः शब्द इसलिये लिखा गया है कि ये तीन भाग उन्हीं, केतुओं में देख पड़ते हैं जो अधिक चमकीले होते हैं। जो केतु केवल यंत्रों से ही देखे जा सकते हैं उन में अधिकांश पुच्छ-हीन होते हैं। कई केतुओं में एक ही साथ कई पुच्छें भी देख पड़ती हैं।
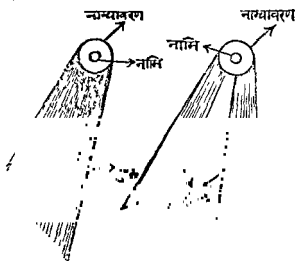
केतु दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जिनका सूर्य्य से संबंध है और दूसरे वे जो स्वतंत्र हैं। हम पहले प्रथम श्रेणी के केतुओं का वर्णन करेंगे।

सब से पहले न्यूटन की समझ में यह बात आई की कदाचित् कुछ केतु सूर्य की परिक्रमा करते हों। परंतु उन्हों ने किसी केतु विशेष के विषय में इस बात का निर्णय नहीं किया। यह काम उनके मित्र हाली ने किया। उन्हीं दिनों एक केतु उदय हुआ था। हाली ने (यह बात सन् १६८२ की है) गणना करके देखा तो यह प्रतीत हुआ कि यह केतु लगभग ७५ वर्ष में पृथ्वी के समीप आता है। उन्होंने पहले की पुस्तकों से पता लगाया कि उस समय से प्रति ७५ वर्ष के अंतर पर पहले केतु देख पड़े थे कि नहीं। इन पुराने कागजों से उनके मत की और पुष्टि हुई। उन्हों ने देखा कि सन् १७५९ में उसको फिर देख पड़ना चाहिए। उस समय तक उनके जीते रहने की संभावना न थी इसलिये वे लिख गए "If it should return according to our predictions about the year 1758, impartial posterity will not refuse to acknowledge that this was first discovered by an Englishman" "यदि हमारे कथन के अनुसार यह सन १७५८ के लगभग फिर लौट कर आवे तो (मुझे आशा है कि) लोग निष्पक्ष भाव से इस बात को स्वीकार करेंगे कि इस की विवृत्ति एक अँग्रेज ने की थी।" उनका कथन सत्य निकला और सन् १७५८ के दिसंबर की २५ तारीख को वह देखा गया। विद्वानों ने भी हाली का समुचित आदर किया है। इस केतु का नाम ही हालि केतु रख दिया गया है। यह वही केतु है जो १९१० में उदय हुआ था। हम में से बहुत कम ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हों ने उसे उस समय न

देखा होगा। अब इसे १९८४ या ८५ में फिर उदय होना चाहिए। हाली के केतु में कई बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो सब से पहले इस के द्वारा ही यह बात निश्चय हुई कि कुछ केतु ऐसे हैं जो गृहों की भांति सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं। दूसरे यह कि जितना समय यह लेता है (अर्थात् ७५ वर्ष) उतना और किसी को नहीं लगता।

इसके अतिरिक्त और भी कई नियत कालिक (periodic) केतु हैं। (नियत कालिक उस पिंड को कहते हैं जो नियत काल में किसी स्थान विशेष पर पहुँचता हो या कार्य्य विशेष करता हो)। एनके, फे, होम्स, ब्रुक्स, डि वाइको आदि के केतु इनमें से प्रधान हैं।

इन सब में विएला के केतु की कथा अत्यंत रोचक है और इस पिंड से ज्योतिषियों को लाभ भी बहुत हुआ है क्योंकि आज कल केतुओं के विषय में जो सिद्धांत हैं उसको निश्चित करने में इसके अवलोकन से बड़ी सहायता मिली है।

पहले पहल इसको बिएला नाम के एक जर्मन ने १८२६ में देखा। गणना करने से पता लगा कि यह लगभग ६⅓ वर्ष में सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी करता है। जब वह १८३२ में फिर पृथ्वी के निकट आया तो एक बड़ा तमाशा हुआ। कुछ लोगों ने गणित करके यह निकाला कि यह पृथ्वी के इतना निकट आ जायगा कि उस से पृथ्वी को टक्कर लग जाने की

संभावना होगी। बस फिर क्या था ? लोग घबरा गए। यह विश्वास हो गया कि पृथ्वी के दिन पूरे हो गए। जब पेरिस वेधालय के अधिष्ठाता ने यह सूचना प्रकाशित की कि उस से और पृथ्वी से कम से कम १½ करोड़ कोस का अंतर होगा तब जा कर लोगों को शांति हुई। जब यह केतु १८४६ में देखा गया तो एक विचित्र बात हुई। यह दो टुकड़ों में विभक्त हो गया और दोनों टुकड़े क्रमशः एक दूसरे से दूर ही हटते गए। १८५२ में दोनों केतु (क्योंकि अब एक से दो हो गए थे) देख पड़े और इनका पहले से आठ गुना अंतर हो गया था। १८५९ और १८६६ में यह बहुत ढूँढ़ने पर भी न मिला। ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह किसी कारण से सौरचक्र के बाहर हो गया। परंतु सन् १८७२ में एक और विचित्र बात हुई। इस साल इस को फिर देख पड़ना चाहिए था और पृथ्वी को इसका मार्ग काट कर जाना था। केतु तो न देख पड़ा पर जब २७ नवंबर को पृथ्वी ने इसका मार्ग काटा तो आकाश में आश्चर्यजनक फूलझड़ी छूटी। असंख्य तारे टूटे और कई आग के गोले, जो चंद्रमा के बराबर प्रतीत होते थे, देख पड़े। ऐसी आतशबाजी कदाचित् ही कभी देखी गई होगी। बात यह है, कि बिएला का केतु टूटते टूटते असंख्य छोटे छोटे टुकड़ों में बँट गया, यहाँ तक कि वे टुकड़े यंत्रों से भी देखे जाने योग्य न रहे। पर जब पृथ्वी इनके बीच में से होकर जाती है तो ये टूटते हुए तारों के रूप में देख पड़ते हैं। इन केतुओं के मार्ग अत्यंत लंबे दीर्घवृत्त होते हैं। इसीलिये कभी तो ये सूर्य्य के निकट आ जाते हैं और कभी कभी

(इन में से कई) नेपचून के मार्ग को भी पार करके बाहर निकल जाते हैं। उदाहरणार्थ एक केतुवृत्त का चित्र दिया जाता है।
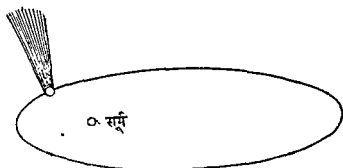
केतुओं का सामान्य वृत्त।

इनमें ह्लोम्स के केतु का वृत्त गोलप्राय है। जब ये घूमते घूमते गृहों के पास पहुँच जाते हैं तो कभी कभी इनकी गतियों पर भारी प्रभाव पड़ता है। १७७० में मेसियर (Messier) ने एक केतु देखा जिसके ५½ वर्ष में लौट आने की आशा की गई। पर यह अभागा केतु घूमते घूमते दो तीन बार वृहस्पति के पास जा चुका था और प्रत्येक बार गुरु की महती आकर्षण शक्ति ने उसके मार्ग में कुछ न कुछ परिवर्त्तन किया था। अंत में १७७९ में इसका मार्ग ऐसा उलट पलट गया कि अब इस के शीघ्र देखे जाने की आशा नहीं है।

ब्रुक्स के एक केतु की अवस्था भी बुरी है। वह बिएला और मेसियर (या लेक्सेल (Lexel) का क्योंकि उसके संबंध में गणित लेक्सेल ने ही की थी) दोनों के केतुओं

से मिलता है। वह पहले १८८९ में देखा गया। वह सात सात वर्ष के अंतर पर लौटता है। परंतु हर बार पहले से कुछ धुँधला देख पड़ता है। संभव है कि वह टूटता जाता हो। १९१७ में उसे देख पड़ना चाहिए था। यदि देख पड़ा भी तो १९२१ में वह वृहस्पति के अति समीप होगा। देखिए इस बात का उस की गति पर क्या प्रभाव पड़ता है। कुछ केतुओं के विषय में अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। गणना से तो यही पता लगता है कि उनको लौटना चाहिए क्योंकि वे सौरचक्र में ही हैं पर यह संदिग्ध कथन है। अभी इस का अनुभव द्वारा अनुमोदन नहीं हुआ है।

अब उन केतुओं को देखिए जो दूसरी श्रेणी में हैं। जहाँ तक हम को ज्ञात है इनका सौरचक्र से कोई संबंध नहीं है। यदि ये सूर्य्य की परिक्रमा करते भी होंगे तो एक एक परिक्रमा में कई लाख वर्ष लगते होंगे। इसलिये इनके विषय में कोई विश्वसनीय गणना नहीं की जा सकती। ये सच्चे परिव्राजक हैं। आकाश में इनका कोई नियत स्थान नहीं हैं। ये सदैव चलते रहते हैं। आज अकस्मात् हमारे सूर्य्य के पास आगए, कल न जाने कहाँ होंगे। आकाश का अनंत असीम विस्तार इनकी अटवी है। किसी ने इनको 'आकाश के दूत' कहा है। यह एक प्रकार सत्य है क्योंकि सचमुच ऐसा ही प्रतीत होता है कि ये एक तारे का दूसरे तारे के पास सँदेसा पहुँचाया करते हैं।

कभी कभी इनके जीवन में निरपेक्षित घटनाएँ होती होंगी। यदि भ्रमण करते करते किसी बड़े तारे के पास ये

आ जाते होंगे, इतने निकट कि उस की आकर्पण शक्ति इन पर आ अपना पूरा प्रभाव डाल सके, तो इनके मार्ग में व्यतिक्रम पड़ जाता होगा, गमन की दिशा में उलट फेर हो जाता होगा। इतना ही नहीं, कभी कभी ये अपनी चिरसंपादित स्वतंत्रता भी खो बैठते होंगे। ये उस तारे के चक्र में पड़ जाते होंगे और इनको उसके चारों ओर घूमना पड़ता होगा। बहुत संभव है कि हमारे सौरचक्र में कई केतु इसी प्रकार फँस गए हों। पर जो केतु स्वाधीन हैं यदि उन पर किसी प्रकार के सूक्ष्म प्राणी हों तो उनको निरुपम आनंद मिलता होगा। वे नित्य एक नया जगत् देखते होंगे और साथ ही एक नए जगत् के प्राणियों की दृष्टियों को सुख देते होंगे।

जो केतु पृथ्वी पर से देखे गए हैं, विशेषतः वे जो बहुत चमकीले और चक्षुदृष्ट रहे हैं, प्रायः इसी अनियत कालिक श्रेणी के थे। उनके विषय में न यह कहा जा सकता है कि वे पहले भी कभी देखे गए थे, और न यह कहा जा सकता है कि अब कभी देख पड़ेंगे। सिवाय हालि-केतु के ऐसे बहुत कम नियत कालिक केतु हैं (या स्यात् एक भी नहीं है) जो प्रकाश में इनकी तुलना कर सकें।

इन में से एक का १८५८ (सन १८५७ के विद्रोह के एक साल के भीतर) में उदय हुआ था। इसको डोनेट केतु (Donatis' Comet) कहते हैं। सैंकड़ों वर्ष में ऐसा प्रकाशमान केतु नहीं देखा गया है।

सन् १८६१ में दूसरा केतु उदय हुआ। ३० जून को पृथ्वी इसकी पुच्छ में से निकल गई पर किसी को कुछ पता

न लगा। केवल आकाश में एक प्रकार की चमक सी प्रतीत होती थी और सूर्य्य का प्रकाश धुँधला सा हो गया था।

एक केतु सन् १८४३ में उदय हुआ था। सन् १८८० में एक दूसरा केतु देखा गया जो ठीक उसी के मार्ग पर चल रहा था। ज्योतिषियों ने इस से यह अनुमान किया कि १८४३ का ही केतु लौट कर आ गया। परंतु १८८२ में उसी मार्ग पर चलता हुआ एक तीसरा केतु देखा गया और १८८७ में एक चौथा भी उसी रास्ते पर चलता पाया गया। यह असंभव है कि जिस केतु को पहली बार लौटने में ३७ वर्ष लगे, वह दूसरी बार २ वर्ष और तीसरी बार ५ वर्ष में लौट आवे। इस से यह अनुमान किया जाता है कि ये किसी ऐसे केतु के टुकड़े हैं जो किसी समय इसी मार्ग पर चल रहा था और अब टूट कर उसके टुकड़े आगे पीछे हो गए हैं।

सन् १८८२ के बाद कोई ऐसा केतु उदय नहीं हुआ है जो बहुत भास्वत् हो। जो केतु चक्षुदृष्ट थे भी वे ऐसे धुँधले थे कि उनकी ओर लोगों ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

अब से कुछ दिनों पहले तक केतुओं को देखने की दो ही युक्तियाँ थीं। अकेली आँख या दूरदर्शक यंत्र। पर अब आकाश के फोटो लिए जाने लगे हैं। ऐसा करने से वे केतु भी, जो इतने धुँधले हैं कि किसी प्रकार उनको देखना असंभव है, अपना चिह्न छोड़ जाते और अपना अस्तित्व बतला जाते हैं।

अब यह प्रश्न होता है कि केतु हैं क्या? इस प्रश्न के उत्तर देने में तीन बातों से बड़ी सहायता मिली है। पाठकों

को वे बातें स्मरण रखनी चाहिएँ जो हमने विएला के केतु के विषय में कही थीं। मोरहाउस के केतु ने भी, जो १९०८ में उदय हुआ था, बहुत सी उपयोगी बातें बतलाई हैं। इसकी पुच्छ का एक टुकड़ा अलग हो गया और मूल केतु से बहुत दूर चला गया। ब्रुक्स के केतु के इसी प्रकार चार टुकड़े हो गए। इन में से एक पहले तो मूल केतु से दूर हटने लगा, फिर कुछ दूर जा कर रुक गया और फूलने लगा और बढ़ते बढ़ते थोड़े दिनों में अदृश्य हो गया। केतुओं की पुच्छों में, यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे सदैव सूर्य्य से उल्टी दिशा में होती हैं। नीचे के चित्र से यह बात समझ में आ सकती है। यह एक कल्पित चित्र है पर यह अवस्था सभी केतुओं की होती है। जब वे सूर्य्य के निकट आने लगते हैं
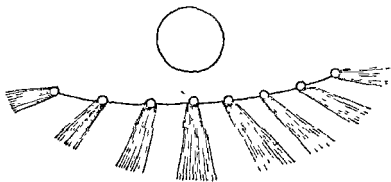
तो आगे आगे सिर पीछे पीछे पुच्छ चलती है, पर जब वे सूर्य्य से दूर होने लगते हैं तो आगे आगे पुच्छ चलती है पीछे पीछे सिर। ज्यों ज्यों वे सूर्य्य के निकट आते जाते हैं, पुच्छ लंबी, चौड़ी और भास्वत् होती जाती है और ज्यों ज्यों दूर होते

जाते हैं वह छोटी और धुँधली होती जाती है। जो केतु सूर्य्य से बहुत दूर रहते हैं उनमें प्रायः पुच्छ होती ही नहीं। इन्हीं सब बातों पर ध्यान रखते हुए आधुनिक ज्योतिषियों ने एक सिद्धांत निश्चित किया है। इस सिद्धांत के निर्णेता विशेषतः ब्रोनेटी और ब्रेडिखाइन हैं। उसका सारांश यह है।

केतु भी उन्हीं तत्त्वों के बने हुए हैं जिनसे सूर्य्य, पृथ्वी आदि अन्य पिंड निर्म्मित हैं। इनमें भी लोहा, कार्बन, सोडियम आदि पदार्थ हैं। रश्मिविश्लेषक यंत्र भी इस बात का समर्थन करता है। उनमें बीच में संभवतः ठोस भाग है। यही केतु की नाभि (nucleus) है। इसी में लोहा इत्यादि है। इस ठोस भाग को घेरे हुए एक वाष्पीय भाग है। इसमें हाइड्रोजन आदि शुद्ध और अमिश्र वाष्प हैं जो जलते समय तेल, घी, चर्बी आदि से निकलते हैं। ये ही केतु का नाभ्यावरण (coma) है। स्वभावतः केतु में यही दो भाग होते हैं। पर जब कोई केतु सूर्य्य या अन्य तारे के पास पहुँच जाता है तो उस पर एक विचित्र प्रभाव पड़ता है। वह तारा तो उसको अपनी ओर खींचता है पर उसके निकट एक प्रकार का वैद्युत अपसारण (electrical repulsion) होता है। एक प्रकार की बिजली की शक्ति उसे दूर हटाती है। या, प्रकाश की तरंगें जो बड़े पिंडों की कोई हानि नहीं कर सकतीं उसको पीछे हटाना चाहती हैं। इस शक्ति के कारण केतु के हलके भाग सूर्य्य की ओर से दूर हट जाते हैं। इन्हीं दूर हटे हुए हलके कणों के समूह का नाम पुच्छ है। ये टुकड़े इतने हलके और पतले हैं कि लाखों कोस तक फैल जाते हैं

और इनके बीच में से तारे पूर्ण प्रकाश से देख पड़ते हैं।

इस प्रकार ये केतु क्रमशः छोटे होते जाते हैं। एक तो ये यों ही बड़े हलके हैं, दूसरे जब कभी किसी तारे के निकट पहुँच जाते हैं तो इनकी थोडी संपत्ति में भी बहुत बड़ी क्षति हो जाती है। बहुत से केतु कुछ काल में यों ही समाप्त हो जाते होंगे।

पर इनके समाप्त होने या नाश होने की एक और भी रीति है। कभी कभी विएला के केतु की भाँति केतु टूट जाते हैं और धीरे धीरे उनके छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों की क्या दशा होती है यह अगले अध्याय से ज्ञात होगा।

यद्यपि आकाश में ऐसा कोई भी पिंड नहीं है जो स्थायी कहा जा सके पर सूर्य्य, ग्रह आदि की अपेक्षा ये केतु अत्यंत क्षणजीवी या अनिश्चित जीवी हैं। ये ग्रहों की भाँति केवल सूर्य्य के प्रकाश से नहीं चमकते प्रत्युत् स्वयं प्रकाशमान् पिंड हैं। हाइड्रोजन और अन्य वाष्पों का अस्तित्व इनके गर्म होने का प्रमाण देता है। ऐसे पिंडों पर जीवों के होने का प्रश्न उपस्थित ही नहीं हो सकता।

---

(१३) उल्का।

कभी कभी अँधेरी रात में, जब कि चंद्रशून्य व्योम में असंख्यासंख्य तारे अपने खद्योतोपम प्रकाश से विस्फुरित होते रहते हैं, दो एक ऐसे विस्फुलिंग या ज्योतिर्बिंदु दृष्टिगत होते हैं, जो एक क्षण के लिये तारामंडल में चलते हुए देख पड़ कर सदैव के लिये लुप्त या अंतर्ध्यान हो जाते हैं। जिस व्यक्ति ने दो चार दिनों तक थोड़ी थोड़ी देर के लिये भी आकाश का अवलोकन किया होगा उसने इनको अवश्य देखा होगा। इनको उल्का कहते हैं। साधारण बोल चाल में इनके देख पड़ने को 'तारा टूटना' कहते हैं। ग्रामीण लोगों का ऐसा विश्वास है कि ये धर्म्मराज के दूतों द्वारा खींचे जाते हुए मृत मनुष्यों के प्राण हैं। प्राण स्थूल हैं या सूक्ष्म और दृष्टिगत हो सकते हैं या नहीं इस प्रश्न का संबंध तो दर्शन-शास्त्र से है, पर ये पिंड वस्तुतः 'तारे' नहीं हैं। 'तारे' इस विश्व में अत्यंत विशाल पिंड हैं और उल्का अत्यंत छोटे।

उल्कापात दिन को भी होता रहता है, पर सूर्य्य के प्रकाश में देख नहीं पड़ता। एक उल्का केवल एक छोटा सा पिंड होता है। उसको एक पत्थर का टुकड़ा समझना चाहिए। उसमें लोहा, कार्बन आदि पाए जाते हैं। जब इस प्रकार का कोई पिंड पृथ्वी के निकट पड़ जाता है तो हमारी आकर्षण शक्ति उसको नीचे खींच लेती है। हमारे वायुमंडल की रगड़ से वह भस्म हो कर राख हो जाता है। ऐसा अनुमान किया

गया है कि दिन रात में कम से कम ४०००००००० उल्काओं की राख पृथ्वी पर गिरती है।

सहस्रों वर्षों से लोग उल्कापात देखते चले आए हैं परंतु यह बात किसी को न सूझी कि इनकी ओर विशेष ध्यान देकर इनके विषय में कुछ और जानने का कोई प्रयत्न करें, जैसा कि मांडर कहते हैं—

"What is every body's business is nobody's business. Work which some one is obliged to do gets done. Work which is only open to a few to undertake also generally finds that some of that few will undertake it. But that which is open to everybody and yet to which no one is appointed, no one is driven,...is left undone............... For thousands of years men have been aware that there were 'wandering stars' to whom was reserved the blackness of darkness for ever. At other times, too, they would come, 'not single spies but in battalions in such numbers and with such brightness as to compel attention and create the deepest astonishment and fear.' But for all those ages it does not seem to have occurred to anyone to try and observe them. There is an immense gulf between the mere admiration of the phenomena of nature and their observations."

"उस काम को कोई नहीं करता जो सब के करने का

है। जिस काम के करने के लिये कोई व्यक्ति वाध्य होता है, वह पूरा हो जाता है। उस काम के लिये भी जो कि इतना कठिन है कि उसमें थोड़े ही व्यक्ति हाथ लगा सकते हैं, करनेवाले दो चार व्यक्ति मिल जाते हैं। परतु वह काम जो सब के लिये है पर जिसके लिये कोई मनुष्य नियत नहीं किया गया है, पड़ा रह जाता है। सहस्रों वर्षों से लोग इस बात को जानते आए हैं कि ऐसे घूमनेवाले तारे हैं जो एक बार दिखाई पड़ कर फिर सदैव के लिये घोर अधकार में पड़ जाते हैं। कभी कभी ये तारे एक दो नहीं प्रत्युत सैकड़ों की सख्या में देख पड़ते थे और इतने चमकीले होते थे कि हठात् ध्यान उनकी ओर खिच जाता था और आश्चर्य और भय का भाव चित्त में उत्पन्न होता था। परतु इतने दिनों तक यह बात किसी को भी न सूझी कि इनको नियमपूर्वक अवलोकन करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्राकृतिक दृग्विषयों को केवल आश्चर्य की दृष्टि से देखने और उनको अवलोकन करने में बड़ा अतर है।"

पहली बात जो ध्यान देने से देख पड़ती है वह यह है कि प्रति रात्रि उल्काओं की सख्या बराबर नहीं रहती। किसी किसी रात में थोड़े तारे टूटते हैं और किसी किसी में बहुत। इतना ही नहीं किसी किसी महीने में अधिक तारे टूटते हैं, किसी किसी में कम।

सन् १७९९ के नवबर में बहुत ही विख्यात उल्कापात हुआ। इसके ३४ वर्ष पीछे सन् १८३३ के नवबर में १३ तारीख को फिर वैसा ही दृश्य देख पड़ा। सारा आकाश इन टूटते हुए तारों से भर गया। इससे यह अनु-

मान किया गया कि ३४ वर्ष में फिर ऐसा ही होगा। यह अनुमान सच्चा निकला। १८६७ की १३ नवंबर को उसी प्रकार की आतिशबाजी देख पड़ी। इसी बीच में यह भी देखा गया था कि प्रत्येक वर्ष नवंबर के महीने में १५ नवबर के लगभग अधिक उल्कापात होता है। इन उल्काओं में एक और बात थी। इन सब के मार्ग सिंह राशि में एक जगह जा कर मिलते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी स्थान से ये सब चले हैं। इसीलिये इनको सैंह उल्कावृंद (Leonid Meteors) कहते थे। १८६७ के बाद एक परिवर्त्तन होने लगा। नवंबर की जिस रात को ये उल्के विशेष रूप से देख पड़ा करते थे उस रात को इनकी संख्या धीरे धीरे कम होने लगी यहाँ तक कि और रातों के बराबर हो गई। १८९९ में फिर ऐसा उल्कापात होना
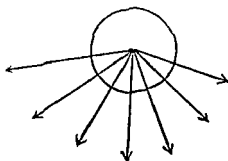
चाहिए था। पर ऐसा न हुआ। हां १९०१ और १९०४ में कुछ हुआ। उसके पीछे अब सैंहों की विशेषता जाती रही।

इसी प्रकार ९ और ११ अगस्त के बीच में प्रति वर्ष अधिक तारे टूटते हैं पर इनकी संख्या के बढ़ने का कोई नियत काल नहीं है।

एक और प्रसिद्ध उल्कावृंद है। यह भी नवबर ही में देख पड़ता है। परंतु इसकी तिथि २३ नवंबर के लगभग पड़ती और लगभग ६६ वर्ष के पीछे इनकी संख्या भी बढ जाया करती है। ये उल्के उत्तर भाद्रपद नक्षत्र की ओर से आते देख पड़ते हैं।

इनके अतिरिक्त और सैकड़ों वृंद हैं जो नियत समय पर देखे जाते हैं। नीचे की सारणी में प्रत्येक महीने के लिये एक एक विशिष्ट वृद देखने की तारीखें बतला दी गई हैं।

महीना	तारीख	मूलस्थान	टिप्पणी
जनवरी	१४–२०	सिगनस ताराव्यूह	मूलस्थान
फरवरी	१५–२०	सर्प ,,	उस स्थान
मार्च	२४	सप्तर्षि	को कहते हैं
अप्रैल	१९–२१	अभिजित् नक्षत्र के पास लायरा व्यूह	जिधर से ये उल्के आते
मई	२९–३१	पेगसस व्यूह	हुए देख
जून	१०–२८	सेफियस व्यूह -	पड़ते हैं।
जुलाई	२५–३१	कुंभ राशि	
अगस्त	९–११	पर्सियस व्यूह	
सितंबर	३–८	मीन राशि	
अक्तूबर	१५–२४	ओरायन व्यूह	
नवंबर	२३–२४	उत्तरभाद्रपद नक्षत्र के पास ऐंड्रोमेडा व्यूह	
दिसंबर	१–१४	मिथुन राशि	

सन् १८६६ में, इन वृंदों के विषय में एक नई बात का पता लगा। शियापेरेली ने गणना करके देखा कि नवंबर के सैंह उल्के ठीक उसी मार्ग पर चलते हैं जिस मार्ग पर टेंपेल का केतु (जिस को सूर्य्य की परिक्रमा में ३२ वर्ष लगते हैं) चलता है। अगस्त के उल्के भी एक केतु के मार्ग पर चल रहे हैं। नवंबर का दूसरा वृंद विएला के केतु के मार्ग पर चल रहा है और उसका नियत काल भी वही लगभग ७ वर्ष है। यह स्मरण रहे कि केतुओं के अध्याय में लिखा जा चुका है कि जब विएला का केतु अदृश्य हो गया तो उसके नियत समय पर आकाश में बहुत से तारे टूटते देख पड़े थे।

इन सब बातों पर विचार करते हुए ज्योतिषियों ने यह मत स्थिर किया है कि उल्कों के वृंद भी ग्रहों की भाँति सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं और इनके भी नियत काल हैं। भेद इतना ही है कि ग्रह एक पिंड होता है और ये असंख्य पिंडों के समूह हैं। जब पृथ्वी किसी उल्कासमूह में से हो कर निकलती है तो तारे टूटते देख पड़ते हैं, क्योंकि पृथ्वी और उल्कावृंद दोनों नियत गति से चल रहे हैं। इसी लिये साल साल भर पर नियत तिथि को पृथ्वी इनसे टकराती है। किसी किसी वृंद में सब टुकड़े बराबर बराबर फैले हुए हैं और किसी में कहीं अधिक हैं और कहीं कम। जिस स्थान पर सब से अधिक टुकड़े इकट्ठे हो गए हैं उसको हम वृंद-नाभि कह सकते हैं। कभी कभी पृथ्वी की इस नाभि से मुठ-भेड़ होती है। उस समय (चाहे वह ३२ वर्ष में हो, चाहे

७ वर्ष में, चाहे किसी और अंतर के पीछे हो) अधिकतर तारे टूटते देख पड़ते हैं।
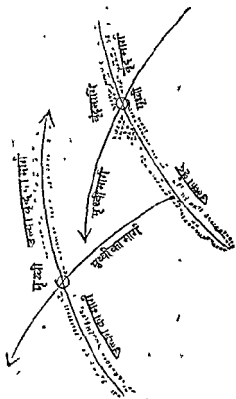
सैंह वृंद के १८९९ में और उसके बाद न देखे जाने का कारण यह बतलाया जाता है कि या तो उसमें के टुकड़े अब बहुत ही तितर बितर हो गए हैं या किसी बड़े ग्रह के पास आ जाने से उसका मार्ग बदल गया है, जिससे अब वह पृथ्वी से टकराता नहीं।

ये वृंद केतुओं के टूटने से बने हैं, इसीलिये कई वृंदों और केतुओं के मार्ग और काल एक ही हैं। बिएला का केतु देखते देखते टूटा है और टूट कर उल्कावृंद में रूपांतरित हो गया है। क्रमशः ये वृंद भी टूट टूट कर छोटे होते जाते हैं और कुछ दिनों में नष्ट हो जायँगे। जब ये किसी ग्रह से टकराते हैं तो इनके असंख्य टुकड़े उस ग्रह पर राख के

रूप में गिरते हैं। इस से ग्रहों की तो वृद्धि होती है पर बूंदों का ह्रास।

उल्काओं के विषय में जितना काम हेनिंग ने किया है और किसी ने नहीं किया। उनकी प्रशंसा करते हुए मॉडर लिखते हैं—"For six thousand years men stared at meteors and learnt nothing, for sixty years they have studied them and learnt much, and half of what we know has been taught us in half that time by the efforts of a single observer.' "छ सहस्र वर्षों तक लोग उल्काओं की ओर ताकते रहे पर उन्होंने सीखा कुछ भी नहीं। साठ वर्ष से लोगों ने उनको ध्यान से देखा है और बहुत कुछ वे जान गए हैं। हम जो कुछ जानते हैं उसका (कम से कम) आधा हमको एक प्रत्यक्षकारी के प्रयत्न से इस साठ वर्ष के आधे काल में ज्ञात हुआ है"।

इन छोटे उल्काओं के अतिरिक्त एक और प्रकार के पिंड होते हैं जो पृथ्वी पर गिरते हैं। इनको अग्निकंदुक (aerolites, holides, fire-balls) कहते हैं। ये देखने में आग के गोले से होते हैं और कभी कभी चंद्रमा के बराबर देख पड़ते हैं। ये गिरते गिरते राख नहीं हो जाते। इनके गिरते समय शब्द भी होता है। कभी कभी ये दिन को भी गिरते हैं। इस भाँति कभी कभी डेढ़ डेढ़ मन के 'पत्थर' आकाश से गिरते हैं। इनमें भी लोहा, कार्बन आदि मिलते हैं। विचित्र बात यह है कि इनमें से किसी किसी में हीरे होते हैं। इन अग्निकंदुकों का गिरना एक बड़ा चित्ताक-

यंक दृश्य होता है। कभी कभी सौ सौ कोस तक शब्द पहुँचता है। अधिकांश ज्योतिषियों का मत है कि ये भी बड़े उल्के हैं पर कुछ ज्योतिषी ऐसा मानते हैं कि ये वे टुकड़े हैं जो आज से लाखों वर्ष पहले पृथ्वी के गर्भ से ज्वालामुखी शक्ति द्वारा बाहर फेंक दिए गए थे और अब सूर्य की परिक्रमा करते हुए पृथ्वी से टकरा कर उस पर गिरते है। इसमे संदेह नहीं कि किसी समय पृथ्वी में ऐसी ज्वालामुखी शक्ति रही होगी जिससे कि फेंके जा कर ये इतनी दूर चले गए हों पर कई कारणों से प्रथम मत अधिक ठीक प्रतीत होता है।

एक और दृश्यविषय है जो उल्कादर्शन के कुछ सदृश है। किसी किसी ऋतु में जब बादल इत्यादि से आकाश निर्म्मल होता है तो सूर्य्योदय के पहले या सूर्य्यास्त के पीछे सूर्य्य के निकट का दिग्विभाग एक प्रकार के श्वेत प्रकाश से भर जाता है। यह दृश्य भारतादि गर्म देशों में ही भली भाँति देखा जा सकता है। इस प्रकाश को 'soft pearly glow' शांत मोतियों का सा प्रकाश' कहा गया है।

ज्योतिषियों का मत है कि सूर्य्य के चारो ओर बहुत दूर तक अत्यंत हलके द्रव्यों का मंडल है। इसमें के टुकड़े उल्काओं से भी हलके हैं। इनको उल्काधूलि (meteoric dust) कहते हैं। जब सूर्य्य निकलता है तो ये चमक उठते हैं और यही दशा सूर्य्यास्त के समय भी होती है। ठंडे देशों में इसका आकार भली भाँति नहीं देख पड़ता, इसको राशिचक्र प्रकाश (zodical light) कहते हैं।

---

(१४) तारामंडल।

अभी तक हम उन पिंडों का कथन करते आए हैं जिन का हमारे सूर्य्य से किसी न किसी प्रकार का संबंध है। गृह, उपग्रह, उल्के, अग्निकंदुक, सब सौरचक्र के भीतर ही हैं। केतुओं में से भी कई ऐसे हैं जो सूर्य्य के सेवकों की श्रेणी में हैं। जो स्वतंत्र केतु हमको देख पड़ते हैं वे भी प्रायः सभी सूर्य्य के निकट आते हैं और अपना कुछ अंश पुच्छ रूप से सूर्य्य को अर्पण कर जाते हैं। ये सब पिंड घनफल और तौल में भी सूर्य्य से छोटे हैं। इन में से स्वनामधन्य गुरु गृह भी सूर्य्य के सामने खेल है। सूर्य्य ही इन सभों का जीवन सर्वस्व है। ये सब ताप, प्रकाश, ऋतु-परिवर्तन आदि के लिये उस के आश्रित हैं। इन पर के प्राणियों की उत्पत्ति और स्थिति, स्वास्थ्य, भरण पोषण सब सूर्य्य पर ही निर्भर है। सूर्य्य के राज्य का विस्तार भी हम को आश्चर्य्य में डाल देता है। नेपचून उस से १ अरब ३९ करोड़ कोस दूर है और कई केतु इस से भी दूर तक चले जाते हैं। संभव है कि नेपचून के बाहर भी गृहों पर सूर्य्य की शक्ति में कोई कमी के चिह्न देख नहीं पड़ते। उसकी कार्य्यप्रणाली में किसी व्यतिक्रम का पता नहीं लगता। वह दूर दूर के पिंडों को उसी प्रकार शासित और नियमबद्ध रखता है जिस प्रकार से निकट के पिंडों को।

इसीलिये हम सूर्य्य को असाधारण श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उसका तीव्र प्रकाश, उस का विश्रुत शक्तिमत्त्व,

उसका सर्वतोमहत्त्व, ये सभी बातें मिल कर हम को इतना विस्मित कर देती हैं कि हम सूर्य्य को आकाश में अद्वितीय समझने लग जाते हैं।

परंतु जब हम तारों की ओर ध्यान देते हैं तो हम सूर्य्य का महत्त्व भूल जाते हैं। सूर्य्य स्वयं एक तारा है, या यों कहिए कि तारे सूर्य्य हैं। पर सूर्य्य इन में से बहुतों से सर्वथा छोटा है।

पहले तारों की दूरी को लीजिए। किसी तारे की दूरी निकालना अत्यंत कठिन काम है। दूरी निकालने की रीति त्रिकोणमिति के अंतर्गत है। इस पुस्तक के अंत में भी वह सरल रीति से बतला दी गई है। उसमें कृत्रिम स्थान-भेद (Parallax) जानना आवश्यक है। कृत्रिम स्थानभेद का अर्थ नीचे के चित्र से समझ में आ जायगा।
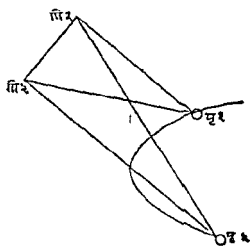
इस में पृथ्वी के क्रांतिवृत्त का एक टुकड़ा दिया गया है। पहले पृथ्वी पृ १ स्थान पर है। उस समय उसकी सीध में एक पिंड पि १ स्थान पर देख पड़ता है। जब पृथ्वी पृ २ स्थान

पर पहुँचेगी तो वही पिंड उसकी सीध में पि२ स्थान पर देख पड़ेगा पिंड वस्तुत अपने स्थान पर है, पर देखने मे पि१ से पि२ तक चला गया। इन दोनों स्थानों के बीच जो अतर है वह इसका कृत्रिम स्थानभेद है। यदि यह नापा जा सके तो उस पिंड की पृथ्वी से दूरी बतलाई जा सकती है।

पर ये तारे इतनी दूर है कि इस कृत्रिम स्थानभेद का नापना अत्यत कठिन है। कितनों मे तो यह देखा जा ही नहीं सकता। जिन में कुछ देखा भी जाता है, उन में भी इसकी नाप सदिग्ध सी ही है। फिर भी इस बडी कठिनाई को जीत कर ज्योतिषियों ने कई तारो की दूरियाँ निकाली हैं, जैसा कि एक ज्योतिषी ने कहा है-" ज्योतिषियों को इस बात के लिये दोप नहीं देना चाहिए कि उन्होंने इतने कम तारों की दूरियाँ निकालीं, प्रत्युत् उनकी प्रशसा करनी चाहिए कि वे किसी एक की भी दूरी निकाल सके।"

तारों को देख कर पहला विचार जो चित में होता है वह यह है कि इन में जो अधिक चमकते हैं वे अधिक निकट हैं। यह विचार एक सीमा तक ठीक भी है, पर कई उदाहरण ऐसे हैं जिन में यह विपरीत पड़ता है।

उदाहरण के लिये दो तीन तारो की दूरियाँ दी जाती हैं। इन को देख कर ज्योतिषियों की प्रतिभा का कुछ अनुमान होता है। एक तारा है जिसका नाम आल्फा सेंटारी (Alpha Centauri) है। (इन नामों का अर्थ आगे चलकर बतलाया जायगा) यह हम से निकटतम है। यह १२५०००००००००००

कोस (१ नील २५ खरब कोस) दूर है । ६१ सिग्नी (61 Cygni) २७५०००००००००००० (२ नील ६५ खरब), कोस दूर है। स्वाती (Arcturus) एक बहुत ही भास्वत् तारा है। यह पृथ्वी से ५८५६६९६०००००००० (५८ नील ५६ खरब ६९ अरब ६० करोड़) कोस से भी अधिक दूर है।

इन दूरियों के सामने बुद्धि घबरा जाती है । संख्याओं को लिखना ही हाथ में है। इनको बुद्धिगत करना हमारी शक्ति के बाहर है। इसीलिये इनको समझाने की एक दूसरी युक्ति निकाली गई है। प्रकाश एक सेकंड में ९३००० कोस चलता है, इसलिये वह एक साल में २९२८३४८०००००००० (२९ खरब २८ अरब ३४ करोड़ ८० लाख) कोस पार करता है। बस, जिस तारे की दूरी बतलानी होती है उसकी दूरी को प्रकाश की प्रति वर्ष की चाल से भाग दे कर यह निकाल लेते हैं कि प्रकाश को वहाँ से पृथ्वी तक आने में कितने दिन लगेंगे। जैसे स्वाती से प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में $\frac{५८५६६९६००००००००}{२९२८३४८०००००००}$ या २०० वर्ष लगते हैं। तो संक्षेप में यह कहेंगे कि स्वाती की दूरी २०० प्रकाशवर्ष (light-years) या ज्योतिर्वर्ष है। भला इन दूरियों का कोई ठिकाना है। जो प्रकाश वहाँ से दो सौ वर्ष पहले चला वह आज यहाँ पहुँचा है। हम उसकी वह दशा देख रहे हैं जो आज से दो सौ वर्ष पहले थी। यदि उसकी परिस्थिति में आज कोई भीषण परिवर्त्तन हो जाय तो पृथ्वी पर उसका पता दो सौ वर्ष पीछे लगेगा ! स्मरण रहे कि कई तारे इस से भी कहीं दूर हैं।

अब इनके विस्तार या घनफल को लीजिए। इनका नापना और भी कठिन है। परंतु तारों को देखने से ही इसका कुछ अनुमान हो सकता है। जो तारे इतनी दूरी पर इतना प्रकाश दे रहे हैं वे वस्तुतः कितने विशाल होंगे। सुभीते के लिये ज्योतिषियों ने इन को कई कक्षाओं में बाँट रक्खा है। जो सब से अधिक भास्वत् हैं वे प्रथम कक्षा में हैं, जो उन से कुछ कम चमकते हैं वे द्वितीय कक्षा में हैं, इत्यादि। अच्छी आँखवाला मनुष्य बारह या तेरह कक्षाओं को देख सकता है। संभव है कि इस तेरहवीं कक्षा के तारे भी हमारे सूर्य्य से बड़े हों।

स्वाती के परिमाण की कुछ गणना हुई है। उसका व्यास ३१०००००० (३ करोड़ १० लाख) कोस है। यह सूर्य्य के व्यास का ७१ गुणा हुआ। अतः इसका घनफल सूर्य्य से ३४३००० गुणा से अधिक हुआ; अर्थात् यह लगभग ३½ लाख सूर्य्यों के बराबर है। हम सूर्य्य के अनन्य सेवक इस भैरव आकार (इसके लिये उपयुक्त विशेषण मिलते ही नहीं) की कल्पना ही नहीं कर सकते। उसका प्रकाश और ताप इतना भीषण होगा कि जिसका अनुमान भी नहीं हो सकता। कहते हैं कि प्रलय काल में १२ सूर्य्यों की गर्मी पड़ेगी। यहाँ तो ३½ लाख सूर्य्य एकत्र हो रहे हैं। इसकी गर्मी को समझने की एक लेखक ने यह युक्ति बतलाई है—"मान लो कि सौरचक्र के सब ग्रह और उपग्रह स्वाती के पास रख दिए जाँय और जिस प्रकार जितनी जितनी दूरी पर वे सूर्य्य की परिक्रमा कर रहे हैं, उसकी परिक्रमा करने लग जाँय। बुध

बिचारा तो रखने के साथ ही इतने बल के साथ खिंचेगा कि तारे के भीतर १२५०००० कोस तक घुस जायगा। शुक्र और पृथ्वी की वही दशा होगी जो किसी बड़े कारखाने के फर्नेस (वह लोहे का भट्टा जिस में आग जलती रहती है) के पास लाने से एक टुकड़े बर्फ की होती है और नेपचून में भी ऐसी गर्मी पड़गी जो पृथ्वी के गर्म से गर्म देशों में भी कदाचित् ही कभी पड़ती होगी।

प्रजापति (Aurigae) ताराव्यूह के ब्रह्महृदय (Capella) तारे का व्यास ७०००००० कोस है और वह घनफल में लगभग ४००० सूर्य्यों के बराबर है। इसी प्रकार कुछ और तारों के घनफल भी निकाले गए हैं, पर जो संख्याएँ ऊपर दी गई हैं वे ही प्रर्य्याप्त हैं।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक तारा एक सूर्य्य है। बहुत संभव है कि इनके साथ भी हमारे सूर्य्य की भाँति ग्रह, उपग्रह, केतु, उल्के आदि भाँति भाँति के पिंड हों, उन पिंडों पर भी जीव होंगे, चाहे उनके आकार, परिमाण, रंग, रूप आदि किसी प्रकार के हों। जिस प्रकार हम उनको नहीं देख सकते उसी प्रकार उनके लिये हमारी पृथ्वी अदृश्य होगी। इतना ही नहीं, उनमें से कई ऐसे होंगे जिन से हमारा सूर्य्य भी न देख पड़ता होगा या किसी बहुत ही नीची कक्षा का तारा सा प्रतीत होता होगा। हम को अपना, अपनी पृथ्वी का और अपने सूर्य्य का अभिमान है; पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वस्तुतः हमारा स्थान कितना तुच्छ है। इस आकाश में हमारा सौरचक्र एक रेणुकण से भी छोटा है।

इन तारों में भी विशेषतः वे ही द्रव्य हैं जो सूर्य्य में हैं। इस बात का पता रश्मिविश्लेषक यंत्र से लगा है। दूरी के कारण पूरी पूरी परीक्षा तो हो नहीं सकती, पर लोहा सोडियम, हाइड्रोजन, पारा, इत्यादि के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। सब तारों में एक ही पदार्थ नहीं मिलते उनमें परस्पर भेद प्रतीत होता है। पर संभव है कि इसमें हमारे अवलोकन की ही भूल हो।

तारों की परिभाषा करते हुए हम ऊपर कह आए हैं कि वे स्थिर और निश्चल पिंड होते हैं। पर यहाँ हमको इस परिभाषा में कुछ उलट फेर करना होगा। विश्व में कोई भी प्राकृतिक वस्तु स्थिर नहीं है। तारों की स्थिरता भी आपेक्षिक है। ग्रहों की चंचलता समझाने के लिये ही इनको स्थिर कहा गया है, प्रत्येक तारा अपने चक्र के ग्रह, उपग्रह, केतु, उल्का आदि के लिये तो स्थिर है पर अन्य तारों के लिये चल है। पृथ्वी की गति का भी हमको पता नहीं लगता। हमारी अपेक्षा वह अचल है पर सूर्य्य या अन्य ग्रहों की दृष्टि में चल है। यही गति तारों की है। इसलिये जब तारों के लिये निश्चल शब्द का प्रयोग किया जाय तो उसका यही विशिष्ट अर्थ समझना चाहिए। कई तारे ग्रहों से भी अधिक वेग से चल रहे हैं।

सब से पहले स्वाती के चल होने का प्रमाण मिला। हाली ने (जिन्हों ने केतुओं के विषय में भी विवृत्तियाँ की थीं) जब आकाश में इसका वर्तमान स्थान नापा तो पहले के ज्योतिषियों के बतलाए हुए स्थान से इसे कुछ टला हुआ पाया। इसका कारण यही हो सकता है कि वह चल रहा है। ऐसा प्रतीत

होता है कि वह १८८ कोस प्रति सेकंड के वेग से चल रहा है। रोहिणी (Aldebaran) १५ कोस प्रति घंटे के वेग से हम से दूर हटती जाती है। इसी प्रकार कई और, सब मिला कर लगभग १०,००० तारों के वेगों की गणना कर ली गई है। ये इतनी दूर हैं कि इनका एक स्थान से स्थानांतर में जाना जल्दी नहीं देखा जा सकता। जितनी चौड़ाई चंद्रमा की यहां से देख पड़ती है उतनी दूर चलने में इनमें से सब से शीघ्रगामी को भी २०० वर्ष से अधिक लग जायँगे। फिर भी यदि पहले के ज्योतिषी इनके स्थानों को ठीक ठीक लिख गए होते तो तारों की गति सुगमता से नप जाती। ज्योतिष इतनी पुरानी विद्या है कि इसमें सहस्रों वर्ष पूर्व की कही हुई या लिखी हुई बातें भी उपयोगी होती हैं। थोड़ा थोड़ा स्थानभेद भी एक या दो सहस्र वर्ष में बहुत हो जाता है।

हमारा सूर्य्य भी तारा है। जब और तारे चल रहे हैं तो स्यात् यह भी चलता हो। यह एक स्वाभाविक प्रश्न है। पर इस का उत्तर देना कठिन है। हम दूसरे तारों को तो चलता देखते हैं पर सूर्य्य को चलता नहीं देख सकते क्योंकि यदि वह चलता होगा तो सौरचक्र के सभी पिंड उसके साथ साथ बँधे फिरते होंगे। उसका और हमारा कभी अंतर नहीं बढ़ सकता और न वह घट सकता है। जब कोई मनुष्य पानी में तैरता है तो जिधर सिर जाता है उधर ही उसके हाथ पाँव, पेट इत्यादि साथ साथ जाते हैं। हाथ पैर या कोई और अवयव यह नहीं कह सकते कि सिर कहीं को चला जा रहा है और हम कहीं; क्योंकि सब साथ ही साथ जा रहे हैं।

सूर्य्य की गति का पता पहले हर्शेल ने लगाया। अपनी रीति उन्होंने एक उदाहरण द्वारा समझाई है। मान लीजिए कि एक सड़क के दोनों ओर बहुत दूर तक वृक्ष लगे हों और एक मनुष्य उस पर चल रहा हो। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ेगा उसको ऐसा प्रतीत होगा कि जिस ओर मैं चल रहा हूँ उस ओर के वृक्ष अलग हो कर सड़क खुली छोड़ते जाते हैं और जिधर से मैं आ रहा हूँ उधर के वृक्ष मिल कर सड़क बंद करते जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य एक लंबी सायादार सड़क पर इसका अनुभव कर सकता है।

इसी प्रकार यदि सौरचक्र किसी दिशा में जा रहा है तो उसके सामने के तारे हटते देख पड़ने चाहिएँ और पीछे के सिमटते हुए। परिश्रम करने से तारों का एक ओर तो अलग होते जाना और दूसरी ओर पास होते जाना वस्तुतः देखा गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि सूर्य्य डेल्टा लायरी तारे की ओर जा रहा है।

उसका वेग क्या है ? यह और भी कठिन प्रश्न है। यदि तारे ऊपर दी हुई उपमा के वृक्षों की भाँति अचल होते तो वेग निकालना कठिन न होता, पर वे स्वयं चल रहे हैं और वह भी भिन्न भिन्न दिशाओं में। यदि ऊपर के उदाहरण में वृक्षों के स्थान में चलते हुए मनुष्य होते तो बीच में चलने वाले मनुष्य का वेग निकालना कितना कठिन होता। परंतु आधुनिक ज्योतिषियों को धन्य है कि उन्होंने इस कठिनाई को भी जीत लिया है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि सूर्य्य प्रति सेकंड ११ मील या ५½ कोस चलता है। यह वेग और

कई तारों के वेग से बहुत कम है, पर यह स्मरण रहे कि इस वेग से सूर्य्य दिन रात में ७०००,०० मील या ३½ लाख कोस चलता है और जिस प्रकार एंजिन के साथ गाड़ियाँ खिंची चली जाती हैं उसी प्रकार सौरचक्र के सब पिंड भी आकाश में इतना अवकाश अतिक्रमण करते हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि सूर्य्य हम को कहाँ लिए जा रहा है। पता नहीं कि यह यात्रा डेल्टा लायरी पर ही समाप्त हो जायगी या वह केवल एक स्टेशन है।

कई तारों की गतियों में एक प्रकार का साम्य देख पड़ता है। कुछ तारे एक ही वेग से एक ही दिशा में चलते देख पड़ते हैं। सप्तर्षि के पाँच तारों में यह साम्य है। इन तारों में कई पद्म कोसों का अंतर है पर इन में आपस में किसी प्रकार का संबंध अवश्य है, नहीं तो गति में यह अद्भुत समता न होती।

इस स्थान पर एक बड़ा रोचक प्रश्न उपस्थित होता है। क्या तारे भी किसी नियम के अनुसार चलते हैं? जैसे कि ग्रहों की गतियों में परस्पर संबंध है, वे एक पिंड विशेष, सूर्य्य, की परिक्रमा करते हैं, उनके मार्ग एक दूसरे के सदृश हैं, क्या इसी प्रकार का नियम तारों में भी है? अभी मनुष्यों ने तारों की गतियों और वेगों का पता लगाना आरंभ किया है। संभव है कि कुछ दिनों में उनकी गति विषयक नियमों का (यदि ऐसे नियम हैं) भी पता लग जाय। इस विश्व में सभी बातें नियमपूर्वक ही होती देख पड़ती हैं; इस से ऐसा अनुमान होता है कि तारों की गति भी किसी नियम का पालन कर रही होगी।

इस समय ज्योतिषियों में दो मत हैं। एक तो यह कि प्रत्येक तारे की गति स्वतंत्र है और दूसरा यह कि ये सब तारे किसी एक बड़े तारे की परिक्रमा कर रहे हैं। वह इन सब का सूर्य्य है और ये उसके गृह हैं। वह महासूर्य्य कौन और कहाँ है, यह अभी कहना असंभव है, पर यदि ऐसा कोई पिंड होगा तो उसका परिमाण, उसका तेज, उस की शक्ति क्या होगी यह हमारे अनुमान के बाहर है। हमारी दुर्बल बुद्धि अपने सूर्य्य के महत्त्व के ही सामने हार मानती है। हम में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि उस पिंड की कल्पना भी कर सकें जो सहस्रों सूर्य्यों का भी सूर्य्य और नियामकों का भी नियामक है।

इतना कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि आकाश में ताराप्रवाहों (star drifts) का होना (बहुत से तारों के समवेग से एक ही दिशा में चलने को ताराप्रवाह कहते हैं) इस नियमित गति के मत की और पुष्टि करता है। संभव है कि जिस प्रकार सौरचक्र के भीतर सब गृहोपगृहादि छोटे बड़े पिंड अपनी अपनी अलग अलग चालों से चल रहे हैं और समस्त चक्र एक ओर को जा रहा है उसी भाँति ये सब तारे किसी एक ओर को प्रवाहित हो रहे हों।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि रश्मिविश्लेपक यंत्र से इन तारों के विषय में बड़ी सहायता मिली है। उनके प्रकाश को देख कर तारों का विभाग किया जाता है। सुभीते के लिये चार विभाग बना लिए गए हैं। पहले विभाग में श्वेत तारे हैं। दूसरा विभाग पीले तारों का है, तीसरा

लाल का और चौथा गहरे लाल तारों का। हमारा सूर्य्य द्वितीय विभाग में है। ये तारे आकाश में यों ही फेंके हुए नहीं हैं, प्रत्युत् नियमपूर्वक रक्खे प्रतीत होते हैं। एक रंग के तारे प्रायः एक जगह पाए जाते हैं, दूसरे रंग के दूसरी जगह। इन बातों का कारण आगे चल कर बतलाया जायगा।

अभी तक हम उन तारों का कथन करते आए हैं जो अनेक पारस्परिक भेदों के होते हुए भी सदैव एक से देख पड़ते हैं। जिसकी जैसी गति है, जैसा प्रकाश है, उसमें व्यतिक्रम नहीं देख पड़ता। पर सब तारे एक ही प्रकार के नहीं होते। कुछ तारे ऐसे हैं जिनके दृश्यरूप में भी परिवर्त्तन होता रहता है। कभी कभी आकाश के किसी ताराशून्य प्रांत में एकाएक एक तारा चमक पड़ता है और फिर कुछ दिनों के पीछे छिप जाता है। ऐसे तारों को अल्पकालिक तारे (temporary stars) कहते हैं। सब से पहले टाइखो ने एक अल्पकालिक तारा १५७२ में देखा। वह वृहस्पति से भी भास्वत् था, पर १५७४ में एकाएक लुप्त हो गया और फिर आज तक न देख पड़ा। इसी प्रकार और भी कई नए तारे देखे गए हैं। कई तो इतने चमकीले थे कि आँख से ही देखे जा सकते थे पर इनमें कई ऐसे भी थे जो केवल यंत्र से ही देखे जा सकते थे। इस काम में डाक्टर एंडरसन का काम प्रशंसनीय है। सन् १८६६ में कोरोना बोरियालिस (Corona Borealis) ताराव्यूह में एक इसी प्रकार का तारा देखा गया। यह पहले भी यंत्र से देखा जा चुका था परंतु उस समय बहुत धुंधला था। पर

१८६६ की १२ मई को चार घंटे के भीतर उसका प्रकाश एकाएक नौ सौ गुणा बढ़ गया और नौ दिनों में फिर वह पुरानी अवस्था को पहुँच गया। उस प्रकाश के समय उसमें रश्मिविश्लेषक यंत्र के द्वारा हाइड्रोजन वाष्प की अधिकता पाई गई।

इस प्रकार के तारों के विषय मे यह मत है कि ये वस्तुतः ज्योतिर्हीन अँधेरे तारे हैं। (ऐसे तारों का कथन अभी किया जायगा) कभी चलते चलते ये सूक्ष्म परिमाणवाले द्रव्यकणों के समूह के बीच में पड़ जाते हैं। (ऐसे समूह आकाश में बहुत जगहों में फैले हुए हैं) उस समय ये रगड़ से प्रज्वलित हो उठते हैं और देख पड़ने लगते हैं। जब ये उस समूह के बाहर हो जाते हैं तो फिर पूर्ववत् अँधेरे और ठंढे हो जाते हैं। सन् १८६६ के तारे के चमक पड़ने का कारण दूसरा था। उसमें एक प्रकार का ज्वालामौखिक उत्क्षेप हो गया और उसके गर्भ में से बहुत सा हाइड्रोजन निकला। कुछ ही घंटों के भीतर यह भीषण कांड अपनी चरमसीमा को पहुँच गया। यदि उस के साथ कुछ ग्रहादि जगत् रहे होंगे तो उतनी ही देर में उन सब में प्रलय हो गया होगा। बिना किसी सूचना के ही सब जीव क्षण भर में भस्म हो गए होंगे और आश्चर्य्य नहीं कि पास के कई पिंड भी राख या धुआँ हो गए हों। यही गति उन पिंडों की होती होगी जो अँधेरे तारों के साथ घूमते घूमते उसके प्रज्वलन के सहभोगी होते होंगे।

इनके अतिरिक्त एक और प्रकार के तारे होते हैं जिनके

प्रकाश में परिवर्तन होता है। इनको विकारी तारे (variable stars) कहते हैं। ये देख तो सदैव पड़ते हैं पर इनका प्रकाश सदैव एक सा नहीं रहता। वह किसी न किसी नियम के अनुसार विकृत होता रहता है। पहले पहले माइरा सेटी (Mira Ceti) में यह परिवर्तन देखा गया। वह ३३१ दिनों में विकृत होता है अर्थात् एक बार चमकता है फिर ३३१ दिनों तक धुँधला रहता है और फिर चमकता है। इसी प्रकार वह बार बार बदलता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस में भीतर किसी प्रकार के भीषण ज्वालामौखिक उत्क्षेप या इसी के सदृश कोई और बात नियमित रूप से ३३१ दिन के अंतर पर होती है।

एक और प्रकार के विकारी तारे हैं, जिनके विकार का कारण और है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके साथ कोई और पिंड है। यह पिंड ज्योतिर्हीन सूर्य ही हो सकता है। जब कोई सूर्य मृत हो जाता है तो उस में से प्रकाश और ताप दोनों चले जाते हैं और वह चंद्रमा के समान निस्ताप और ज्योतिर्हीन रह जाता है। इस प्रकार के न जाने कितने मृत सूर्य इस विश्व में होंगे पर हम को उनमें से विरले ही कभी किसी का पता लगता है।

इस द्वितीय प्रकार के विकारी तारों के साथ कोई मृत सूर्य्य होता है। ये दोनों सूर्य्य, मृत और जीवित, एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं; या यों कहिए कि अपने मध्यस्थ किसी बिंदु या अन्य मृत सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इनके मार्ग एक दूसरे को काटते हुए निम्नलिखित प्रकार के होंगे-

इसलिये जब कभी यह ठंढा सूर्य अपने चमकते हुए साथी के सामने आ जाता है तो वह छिप जाता है और जब फिर हट जाता है तो वह देख पड़ने लगता है।
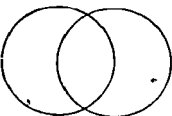
ऐलगोल (Algol) इसी श्रेणी का एक विकृत तारा है। गणना से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका व्यास ५०००० कोस और उसके मृत साथी का ४००००० कोस है। इन दोनों के बीच में १५००,००० कोस का अंतर है और ये दोनों एक दूसरे मृत सूर्य की जो इनसे ९०००,०००,०० कोस दूर है, १८० वर्ष में परिक्रमा करते हैं।

आकाश में ऐसे बहुत से तारे हैं जो इसी प्रकार एक दूसरे की परिक्रमा करते रहते हैं। इनको द्विदैहिक तारे (Binnary stars) कहते हैं। बहुत लोगों ने सप्तर्षि में के वसिष्ठ तारे को देखा होगा। उसके पास ही एक बहुत ही छोटा तारा देख पड़ता है जिसको वसिष्ठ की स्त्री अरुंधती का नाम दिया गया है। लोगों का विश्वास है कि मरने के छ महीने पहले मनुष्य अरुंधती को नहीं देख सकता। ये दोनों वशिष्ट (Mizar) और अरुंधती (Alcoi) द्विदैहिक तारे हैं। पहले लोगों का ऐसा विश्वास था कि ये तारे दूर होने के कारण ही एक साथ देख पड़ते हैं, पर अब कई प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो गई है कि ये वस्तुत: आकर्षण नियम के अनुसार एक दूसरे से संबद्ध हैं, यद्यपि इनमें करोड़ों कोस का अंतर है।

इस आकर्षण सिद्धांत की सर्वव्यापकता का एक बड़ा

उज्वल दृष्टांत इसी संबंध में मिला। सन् १७४४ में बेसेल ने देखा कि सिरियस तारा अपने मार्ग से किसी पिंड द्वारा आकर्षित किया जा रहा है। जिस प्रकार कि नेपचून के विषय में गणना की गई थी उसी प्रकार गणना कर के उस कल्पित पिंड का स्थान, परिक्रमण काल आदि ब्योरा निकाला गया। जब १८६१ में वह तीव्र यत्रों से देखा गया तो गणित की सब बातें ठीक निकलीं।

इतना ही नहीं, त्रिदैहिक, चतुर्दैहिक आदि तारे भी पाए जाते हैं। कहीं तीन, कहीं चार, कहीं इससे भी अधिक एक साथ बँधे हुए हैं। एक दूसरे में लाखों कोस का अंतर है पर आकर्षण की अचूक शक्ति सब को शासित कर रही है। जाड़े के दिनों में कृत्तिका (Pleiades) तारापुंज बड़ा स्पष्ट देख पड़ता है। इसमें आँख से,सात तारे प्रतीत होते हैं पर यंत्र से देखने से इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। ये सब एक ही ताराचक्र में हैं; सब का एक दूसरे से संबंध है।

इन अनेक दैहिक तारों में प्रायः रंग का भेद होता है। कोई लाल, कोई हरा और कोई पीला होता है। इनके साथ जो ग्रह होंगे यदि उनमें भी किसी प्रकार के प्राणी होंगे तो उनको कैसा विलक्षण दृश्य देख पड़ता होगा। कभी एक उदय होगा, कभी दूसरा, कभी दो दो साथ ही उदय होते होंगे। इनके मेल से क्या क्या रंग देख पड़ते होंगे। त्रिदैहिक आदि तारों के ग्रहों में उत्तरोत्तर सुंदर दृश्य देख पड़ते होंगे। जैसा कि एक लेखक का कथन है—'जो ग्रह कृत्तिका के बीच में होते होंगे उनमें कभी रात होती ही न होगी।'

इस पुस्तक में फ्रैमेरिअन का कई बार नाम आ चुका है। वैज्ञानिक बातों को सरस और गंभीर भाषा में लिखने में वे अद्वितीय थे। उन्होंने द्विदैहिक तारों के विषय में जो कुछ कहा है वह इतने श्रेष्ठ विचारों से पूर्ण है और ऐसी रीति स कहा गया है कि उसका उद्धृत करना एक सुखप्रद कर्त्तव्य है। खेद इतना ही है कि मैं उसका ठीक अनुवाद न कर सकूँगा।

"The double stars are so many stellar dials, suspended in the heavens, marking without stop, in their majestic silence the inexorable march of time, which glides away on high as here, and showing to the earth from the depth of their unfathomable distance the years and centuries of other universes, the eternity of the veritable empyrean! Eternal Clocks of Space! your motion does not stop your finger, like that of destiny, shows to beings and things the everlasting wheel which rises to the summits of life and plunges into the abysses of death And from our lower abode we may read in your perpetual motion the decree of our terrestrial fate, which bears along our poor history and sweeps away our generation like a whirlwind of dust lying on the roads of the sky, while you continue to revolve in silence in the mysterious depths of infinitude!"

"द्विदैहिक तारे एक प्रकार की नाक्षत्र घड़ियाँ हैं जो आकाश में लटकी हुई गंभीर और निःशब्द रूप से प्रभावशाली काल की, जिसका राज्य सर्वत्र है, अप्रतिरुद्ध गति की निरंतर सूचना देती रहती हैं और अपनी अथाह दूरी से पृथ्वीवासियों को दूसरे जगतों के वर्षों और शताब्दियों और स्वर्लोक की नित्यता का अनुभव कराती हैं। आकाश की शाश्वत् घड़ियो! तुम्हारी गति कभी नहीं रुकती और कर्म्म के अचूक नियम की भाँति, तुम्हारी उँगली जड़ और चैतन्य सब को वह नित्य चक्र दिखलाती है जो जीवन के शिखर पर चढ़ा कर मृत्यु के खात मे गिरा देता है। हम पृथ्वी के रहनेवाले तुम्हारी निरंतर गति से अपने जगत् की उस भावी स्थिति को जान सकते हैं जो अपने अनुकूल हमारे तुच्छ इतिहास को मोड़ रही हैं और हम लोगों को इस प्रकार उड़ा रही हैं जैसे कि हम आकाश की सड़क पर गर्द की भाँति पड़े हों और उड़ा दिए जायँ; पर तुम असीम सत्ता की गोद में अपने नीरव भ्रमण में लगी रहती हो।"

अभी तक हम तारों के विषय में साधारण बातें कहते आए हैं। इनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो बिना यंत्रों की सहायता और विशेष गणित-ज्ञान के देखे या जाने नहीं जा सकते। परंतु इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि तारों के संबंध में आँख निरर्थक है। प्राचीन काल से लोग तारों को देखते आए हैं और अब भी तारों को पहचानने के लिये किसी यंत्र की आवश्यकता नहीं है।

कई तारों के समूह को ताराव्यूह (Constellation) कहते हैं। प्राचीन काल से ही लोगों ने आकाश को इस प्रकार के ताराव्यूहों में बाँट रक्खा है। यह आवश्यक नहीं है कि किसी व्यूह के तारों में कोई वास्तविक संबध हो। बहुधा उनमें कोई गति आदि की समता नहीं पाई जाती। पर लोगों ने कई तारों को जो एक जगह थे और जिनके जोडने से कोई आकार विशेष बनता था ले कर एक नाम दे दिया। किसी का नाम श्वान, किसी का सिंह, किसी का कन्या इत्यादि। उदाहरण के लिये नीचे उस ताराव्यूह का चित्र दिया जाता है जिसको धनुराशि कहते हैं। इसमें जो मुख्य मुख्य तारे देख पड़ते हैं उनको क, ख, ग, आदि नाम दिए गए हैं। बीच मे जो धारियाँ हैं वे कल्पित हैं। क से ङ तक धारियों से एक प्रकार का धनु बनता है। च और छ को जोडने से तीर का सिर बनता है। ज उसका नीचे का सिरा हुआ। ट ठ चलानेवाले की ग्रीवा है। झ ञ के पास उसका कंधा है। ड ढ ण उसके
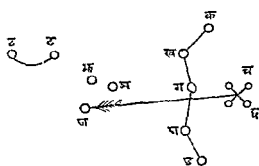
घोड़े का पैर है। और सब आकार केवल कल्पित धारियों से पूरा कर लिया जाता है। आगे के पाँच तारों के कारण इस व्यूह का नाम धनु पड़ा। इसी प्रकार अन्य व्यूहों के भी नाम और आकार बने हैं।

एक और उदाहरण देता हूँ। जिसने कभी भी निर्भ्रंद्र आकाश की ओर देखा होगा उसने नीचे के व्यूह को अवश्य देखा होगा।
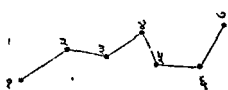
इसको हमारे यहाँ सप्तर्षि कहते हैं। हिंदू ज्योतिषियों ने इनको निम्नलिखित सात ऋषियों के नाम दे रक्खे हैं—

मरीचि, वसिष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु। इन नामों के क्रम से तारों पर १, २, ३, आदि संख्याएँ लगा दी गई है। यहाँ तक तो ठीक है। पर युरोप के लोगों को ये तारे एक रीछ के आकार में देख पड़ते हैं। उन्होंने इस व्यूह का नाम उर्सा-मेजर (Ursa major) अर्थात् 'बड़ा भालू' रक्खा है।

इन व्यूहों का नामकरण कब और किसने किया यह एक बड़ा रोचक प्रश्न है। सब सभ्य॰ देशों में एक से ही नाम पाए जाते हैं। सभी देशों में लोगों ने आकाश को स्त्री, सिंह, साँड, सर्प आदि के आकारों में बाँट रक्खा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ये आकार कल्पित हैं। बीच में

कोई धारियाँ नहीं बनी हैं। यदि चाहें तो इन्हीं तारों को अन्य प्रकार के आकारों में बाँट सकते हैं। फिर क्या कारण है कि सब जगहों के लोगों ने एक ही प्रकार का विभाग किया है ? इस समता का कारण यही हो सकता है कि किसी एक देश से सब ने सीखा है। यद्यपि भारत ने ज्योतिष में बड़ी उन्नति की थी पर पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में प्रधान व्यूहों अर्थात् बारह राशियों के नाम यहाँ के ज्योतिषियों ने यवनों अर्थात् यूनानियों से सीखे। यूनानी भी इनके विधुत्तिकारक न थे। जहाँ तक पता लगता है पहले पहल फ़ारस के पश्चिम मेसोपोटेमिया देश के आदिम निवासी, जो किसी समय में पृथ्वी की सभ्यतम जाति में थे, और देशों के इस बात में आचार्य्य थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन नामों के लिये किसी प्रकार के धार्म्मिक कारण थे। उन लोगों ने अपनी किसी प्रधान धर्म्मकथा या दार्शनिक सिद्धांत के अनुकूल तारों को इस प्रकार विभक्त किया है और अन्य जातियों ने मूल कारणों को भूल कर भी आकारों और नामों को यथावत् ही रक्खा है।

तारों और व्यूहों को पहचानने के लिये एक अच्छे अटलस् (Atlas) की आवश्यकता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ पायोनियर प्रेस, इलाहाबाद, का छपा हुआ ईज़ी पाथ्स् टु दि स्टार्स् (Easy paths to the stars) हमारे लिये सर्वोत्तम अटलस् है। इसमें प्रत्येक महीने में भारतवर्ष में किस किस तारीख को रात को कितने बजे आकाश का क्या रूप होगा, दिया हुआ है। जो मनुष्य थोड़ी सी भी अंग्रेज़ी जानता है वह अल्प परिश्रम से

ही सभी प्रधान प्रधान व्यूहों और तारों को पहचान सकता है। यह एटलस् ७।।) को मिलता है। मैं इस प्रारंभिक पुस्तक में इस रोचक परंतु वृहत् विषय का विस्तृत वर्णन नहीं कर सकता। यह पुस्तक विशेषतः वर्णनात्मक है, व्यावहारिक नहीं। तारों को पहचानने से कई लाभ होते हैं। एक तो चित्त को प्रसन्नता होती है। जब आकाश की ओर देखिए, कुछ परिचित मूर्त्तियाँ देख पड़ जाती हैं। बहुत से ग्रामीण पुरुष तो तारों को देख कर समय बतला देते हैं। पृथ्वी की गति के कारण प्रत्येक व्यूह प्रति दिन चार मिनट पहले उदय होता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए तारों को अवलोकन करने से थोड़े काल में समय बतलाने का अभ्यास हो सकता है।

समय जानने के लिये सब तारों को जानने की भी आवश्यकता नहीं है। केवल उन ताराव्यूहों की गति पर ध्यान देना पर्य्याप्त है जो ध्रुवतारे के चारों ओर हैं। ध्रुव को पहचानना कुछ कठिन नहीं है। सप्तर्षि के ६ और ७ तारों को जोड़नेवाली रेखा यदि उत्तर की ओर बढ़ा दी जाय तो जितनी दूरी ७ ओर ३ में है उससे कुछ अधिक दूरी पर ध्रुव तारा मिल जायगा। यह तारा अचल-प्रतीत होता है और पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर ठीक सिर के ऊपर देख पड़ता है। पृथ्वी के अक्षभ्रमण के कारण और सब तारे इसकी परिक्रमा करते दिखाई देते हैं।

ध्रुव के चारों ओर के तारों को मांडर्स—'उत्तर में बड़ी नाक्षत्र घड़ी' 'The great Star-clock in the North.'

कहते हैं। इनकी गति के विषय में उनका कथन है— "We are spectators of the movement of one of Nature's machines, the vastness of the scale of which and the absolutely perfect smoothness and regularity of whose working so utterly dwarfs the mightiest work accomplished by man." "हम प्राकृति के एक ऐसे यंत्र की गति के दर्शक हैं जिसके वृहत् विस्तार और निर्विघ्न नियमबद्ध चाल के सामने मनुष्य के बड़े से बड़े कृत्य तुच्छ हैं।"

यहाँ पर तारों के नाम देने की पद्धति को समझा देना आवश्यक है। प्रत्येक व्यूह के तारे को बतलाने के लिये व्यूह के नाम के साथ ग्रीक वर्णमाला का एक एक अक्षर लगा देते हैं। इस वर्णमाला में चौबीस अक्षर हैं—

आल्फा	आयोटा	रो
बीटा	कापा	सिग्मा
गामा	लैम्बडा	टाओ
डेल्टा	म्यू	युप्सिलोन
एप्सिलान	न्यू	फाइ
जीटा	क्साई	काइ
ईटा	ओमिक्रन	प्साई
थीटा	पाइ	ओमेगा

उदाहरण के लिये फिर सप्तर्षि का चित्र* देखिए। अब यदि हमको इस व्यूह के पहले तारे का नाम लेना हो तो उसे 'आल्फा उर्सा मेजोरिस' कहेंगे, क्योंकि इस व्यूह का नाम उर्सा

मेजर है। यदि इन तारों को संस्कृत वर्णमाला से नाम दिए जायँ तो इसका नाम 'अ सप्तर्षि' होगा।

इन चौबीस अक्षरों से काम नहीं चलता। किसी किसी व्यूह में सैकड़ों तारे हैं। उनमें जब सब अक्षर समाप्त हो जाते हैं तो संख्याएँ लगा देते हैं। जैसे पहले '६१ सिग्नी' का नाम कई बार आ चुका है। इसका तात्पर्य है 'सिग्नस' नामक व्यूह का ६१ वाँ तारा।

सिग्नी, उर्सी, आदि सिग्नस, उर्सा आदि से लैटिन भाषा के व्याकरण के अनुसार बने हुए संज्ञाविशेषण हैं।

इस पद्धति का समझ लेना आवश्यक है क्योंकि ज्योतिष की सभी आधुनिक पुस्तकों और अटलसों में इसी के अनुसार नाम दिए रहते हैं।

---

(१५) नभस्तूप ।

यह एक ऐसा दृग्विषय है जो बिना यंत्र के भली भाँति नहीं देखा जा सकता। जो दो एक नभस्तूप आँख से देख भी पड़ते हैं वे इतने प्रचंड नहीं हैं कि दृष्टि को हठात् अपनी ओर खींच लें। पर यंत्रों से देखने से इनका रूप ही पलट जाता है।

आकाश में कहीं कहीं प्रकाश के बादल से देख पड़ते हैं। इनको ही नभस्तूप या नीहारिका (nebula) कहते हैं। एक चक्षुगोचर नभस्तूप उस स्थान पर है जहाँ आर्द्रा और मृगशीर्ष नक्षत्र हैं। उस व्यूह को ओरायन (Orion) कहते हैं। यह स्तूप यंत्र से भी सब में बड़ा और घना दिखाई देता है। दूसरा स्तूप एंड्रोमेडा व्यूह भाद्रपद नक्षत्र के पास देख पड़ता है।

इनके अतिरिक्त आकाश में भिन्न भिन्न स्थानों में लाखों नभस्तूप देखे गए हैं। इनमें से कुछ इतने सूक्ष्म या दूर हैं कि वे यंत्र से भी नहीं देखे जा सकते। केवल फोटो में उनका चिह्न पड़ जाता है।

इनके घनफल की अभी कुछ ठीक ठीक गणना नहीं हुई है पर ओरायन के नभस्तूप के विषय में सर राबर्ट बाल ऐसा अनुमान करते हैं कि वह हमारे सारे सौरचक्र से कई लाख गुणा बड़ा होगा। पर ये अपने विस्तार की अपेक्षा बहुत हल्के और पतले होते हैं। इनके बीच में से तारे देख पड़ते हैं।
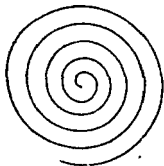
इन सब का आकार एक सा नहीं होता। कोई कोई अंडे के आकार के होते हैं, कोई गोल होते है कोई मुद्रिकाकार होते हैं। कई स्तूप ओरायन के स्तूप की भाँति आकार विशेषहीन फैले होते हैं और कोई चक्राकार (spiral-shaped) होते हैं।

पहले लोगों का ऐसा मत था कि ये स्तूप वस्तुतः तारों के समूह हैं। इस बात की पुष्टि भी इस प्रकार हो गई कि तीव्र यंत्रों से देखने से कई स्थानों में जहाँ आकारहीन बादल से देख पड़ते थे, तारे पाए गए। ये तारे इतने निकट थे कि इनके मिलने से एक प्रकार का बादल सा बन जाता था। इसलिये सभी जगहों में ऐसे तारों के गुच्छों की कल्पना की गई। परंतु रश्मिविश्लेपक यंत्र ने इस मत को झूठा प्रमाणित कर दिया। उस से देखा गया कि ये तारों के समान पिंड नहीं हैं प्रत्युत दहकते हुए वाष्पों के पुंज हैं।

ये पुंज स्थिर नहीं हैं। ये भी तारों की भाँति चल हैं। ओरायन नभस्तूप ५½ कोस प्रति सेकंड के वेग से हमसे दूर चल रहा है। इसी प्रकार और स्तूपों में भी गतियाँ हैं। यह एक विचार करने की बात है। इनमें भी आकर्पण का नियम काम कर रहा है। यदि ऐसा न होता तो वाष्प के कण सब कहीं के कहीं उड़ गए होते परंतु आकर्पण ने इनको ऐसा बाँध

रक्खा है कि हवा के समान सूक्ष्म द्रव्य के पुंज होते हुए भी ये आकाश में ठोस पिंडों की भाँति भ्रमण करते हैं। ये कहाँ जा रहे हैं, यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रश्न का उत्तर ठीक ठीक तब ही मिलेगा जब तारों की गति का कोई निश्चित नियम ज्ञात हो जायगा।

यहाँ पर हम इनका वर्णन छोड़ते हैं, पर यह बड़ा महत्वपूर्ण विषय है। किसी आगामी अध्याय में इनका विशेष विवरण होगा। वहाँ दिखलाया जायगा कि इनके अवलोकन से ज्योतिष के सिद्धांतों की कितनी वृद्धि हुई है।

---

(१६) आकाश गंगा ।

आकाश गंगा को कदाचित् ही किसी ने न देखा होगा। चंद्रहीन रात में, विशेषतः ग्रीष्मऋतु में, आकाश में दूर तक फैली हुई एक प्रकाश की धारा देख पड़ती है। यही आकाश गंगा है। इसको अँगरेज़ी में दुग्धमय पथ (Milky Way) कहते हैं। यह नाम बड़ा ही उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि यह वस्तुतः दूध की नदी सी ही देख पड़ती है।

हिंदू लोग गंगा को त्रिपथगामिनी मानते हैं। हमारा यह विश्वास है कि गंगा की तीन धाराएँ हैं। एक तो पृथ्वी पर बहनेवाली प्रसिद्ध गंगा नदी है, दूसरी पाताल में बहती है और तीसरी यही आकाश गंगा है। प्राचीन यूनानी लोग इसको देवताओं का मार्ग मानते थे। जो कुछ हो, यह आकाश में एक अति मनोहर और सगौरव दृग्विषय है।

इसकी मनोरंजकता केवल साधारण मनुष्य के ही लिये नहीं है। ज्योतिषियों को भी स्यात् ही किसी और वस्तु में इतनी रोचकता प्रतीत होती होगी।

पहली बात जो इसमें प्रत्यक्ष देख पड़ती है वह यह है कि यह सब जगह समान रूप से फैली हुई नहीं है। बीच में इसके दो टुकड़े हो गए हैं। कुछ इस प्रकार का आकार देख पड़ता है—
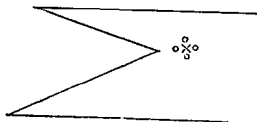
इस प्रकार फट तो यह कई जगह गई है पर मेरी समझ में यह सब से प्रधान है और इस के पहचानने में भूल नहीं हो सकती। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस स्थान पर (%) इस प्रकार का चिह्न है वहां से दो धाराएँ हो गई हैं। यह गर्मी में आधी रात के लगभग स्पष्ट देख पड़ती है।

दूसरी बात जो ध्यान देने की है वह यह है कि आकाश के अधिकांश ताराव्यूह और तारे इसी के पास देख पड़ते हैं। प्रधान प्रधान नभस्तूप भी सब इसके भीतर या अत्यंत निकट हैं।

यह स्वयं तारों का समूह है। ये तारे इतने निकट हैं कि मिल कर सब एक हो गए हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि ये वस्तुतः निकट हैं, प्रत्युत् दूरी के कारण निकट प्रतीत होते हैं। पहले भी लोगों का ऐसा ही अनुमान था पर जब से यंत्र बन गए हैं इस अनुमान का बराबर समर्थन होता गया है। जहाँ केवल धुँधला सा प्रकाश देख पड़ता था वहाँ तारों के झुंड देख पड़ते हैं। अब भी इस प्रकार के कई अस्पष्ट टुकड़े हैं पर इसमें संदेह नहीं कि भविष्यत् के तीव्र यंत्र उनको या तो तारासमूह या नभस्तूप प्रमाणित कर देंगे।

इस बड़ी धारा के अंतर्गत कई छोटी छोटी धाराएँ हैं।

इसके किसी किसी अंग में सहस्रों तारे ऐसे देख पड़ते हैं जिनमें करोड़ों कोसों के अंतर के होते हुए भी, किसी न किसी प्रकार का संबंध है। इतना ही नहीं, ऐसा प्रतीत होता है कि तारों में दो मुख्य धाराएँ हैं जो दो विपरीत दिशाओं से चल कर बीच में मिलती हैं।

यह बात विचार करने योग्य है। बहुत से चल पिंडों के मिलने से एक सौरचक्र बनता है। प्रत्येक सूर्य्य अपने सौर-चक्र को ले कर आकाश में न जाने कहाँ जा रहा है। इसी भाँति के कई सौरचक्रों का एक ताराप्रवाह बना। पता नहीं इस भाँति के कितने प्रवाह हैं और किधर जा रहे हैं। इस प्रकार के लाखों प्रवाहित तारों की एक धारा हुई। ऐसी दो धाराओं को हम जानते हैं। संभव है कि और भी हों। अब ये दोनों प्रधान धाराएँ न जाने किधर को जा रही हैं। इस सारे प्रपच में हमारे सूर्य्य का, पृथ्वी का, या हमारा क्या महत्त्व रहा यह कहा नहीं जा सकता। एक सूर्य तो क्या, इस प्रकार के सैकड़ों सूर्य्यों की स्थिति (या अभाव) इस विशाल इंद्रजाल के ऊपर भला या बुरा कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती।

यह हम ऊपर कह आए हैं कि तारे अधिकांश आकाश-गंगा में या इसके पास देख पड़ते हैं। आकाश का जो अंश इस से जितना ही दूर है, उसमें उतने ही कम तारे हैं। इन बातों पर विचार करते हुए ज्योतिषियों को ऐसा प्रतीत हुआ है कि आकाश के सब तारे एक गेंद के रूप में रक्खे गए हैं और यह आकाशगंगा इस गेंद का मध्य भाग है। ज्यों ज्यों हम मध्यभाग से दूर जाते हैं, तारे कम होते जाते हैं; अर्थात्

गेंद का मध्यभाग अधिक घना है। इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि यह वस्तुतः कोई ठोस गेंद है प्रत्युत यह कि तारों के समूह का आकार गेंद सा है।

तारों की संख्या क्या है? बिना किसी यंत्र के मनुष्य लगभग २००० तारों को स्पष्ट रूप से देख सकता है। यंत्रों से इससे कई लाख गुणा देख पड़ते हैं। इनकी संख्या ५० करोड़ या ६० करोड़ से कम नहीं हो सकती। पर तारे असंख्य नहीं हैं, या यों कहिए कि यद्यपि ये असंख्य हैं पर संख्या-हीन नहीं है। आकाश के कई ऐसे विभाग हैं जहाँ तारे नहीं देख पड़ते, या कुछ गिने हुए तारे देख पड़ते हैं। तीव्र से तीव्र यंत्र भी वहाँ तारों की दृश्य संख्या न बढ़ा सके। इसी से ऐसा ज्ञात होता है कि तारों की संख्या की भी सीमा है।

पर जो तारे हम को देख पड़ते हैं, यदि इनकी सीमा है, यदि ये एक गेंद के आकार में हैं, तो इनके पीछे इस गेंद के पीछे, क्या है? अंधकार, घोर अंधकार। आकाश के तारा-शून्य प्रांतों में से तीव्र से तीव्र यंत्र, फोटो या रश्मिविश्लेषक, किसी पिंड का पता न ला सका। सिवा अंधकार के वहाँ और कुछ भी नहीं है। हमारे लोक का यहाँ अंत हो गया। इस लोक की भी—जिस में कोट्यानुकोटि सूर्य्य, पद्मों ग्रहोपग्रह, असंख्यप्राय प्राणी हैं— सीमा है। इस सीमा के बाहर आकाश ही आकाश है।

परंतु आकाश सर्वव्यापक, अनादि और अनंत है। हम को यह कहने का अधिकार नहीं है कि हमारे इस लोक के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं है। हाँ, यदि कोई लोकांतर (outer

universe) होगा तो वह इस लोक से बहुत बड़ी दूरी पर होगा। मिस्टर गोर एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। उन्होंने अनुमान किया है कि यदि इस लोक के बाहर कोई लोक होगा तो उसकी दूरी इस लोक की सीमा से कम से कम २६०, ०७४, ८००, ०००, ०००, ०००, ०००, (दो सहस्र छ सौ पद्म चौहत्तर शंख अस्सी नील) कोस होनी चाहिए। वह मनुष्य कौन सा है, जिसकी बुद्धि इस दूरी की कल्पना कर सकती है।

'यदि कोई लोक हो' इस 'यदि' का अर्थ यह नहीं है कि अन्य लोक के होने में किसी प्रकार का संदेह है। ज्योतिषियों में से अधिकांश का यह विश्वास है कि एक नहीं, इस प्रकार एक के बाहर एक, कई लोक होंगे। संभव है कि उनकी सृष्टि हम से सूक्ष्म हो और उनके प्राणी हम से दिव्य हों।

जिन लोगों को सनातन धर्म्म में कुछ निष्ठा है और उसका कुछ ज्ञान है वे इस अवसर पर शास्त्रों के कथन को स्मरण करेंगे। हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं कि इस भूलोक के ऊपर भुवर्लोकादि छः और लोक हैं, जिनमें सब से ऊपर सत्यलोक–स्वयं परमात्मा का लोक है। हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं कि उत्तरोत्तर लोकों की सृष्टि दिव्य और सूक्ष्म है। नीचे हम इन्हीं पाश्चात्य वैज्ञानिक गोर महाशय का एक वाक्य उद्धृत करते हैं। पाठक उनके विचारों और अपने शास्त्रों के कथनों के सादृश्य को स्वयं देख लेंगे—

"Could we speed our flight through space on angel wings beyond the confines of our limited universe to a distance so great that the interval

which separates us from the remotest fixed star, might be considered as merely a step on our celestial journey, what further creations might not then be revealed to our wondering vision? Systems of a higher order might then be unfolded to our view, compared with which the whole of our visible heavens might appear like a grain of sand on the ocean shore—systems perhaps stretching to Infinity before us and reaching at last the glorious mansions of the Almighty, the Throne of the Eternal.'

"यदि हम दैवी पख लगा कर आकाश में अपने परिमित लोक के बाहर इतनी दूर जा सकें कि हमारे लोक का जो सब से दूर तारा है उससे जो हमारा अंतर है वह भी इस यात्रा में एक पग के बराबर हो जाय तो हमारी आश्चर्य-संकुचित दृष्टि मे कैसी कैसी नूतन सृष्टियाँ आतीं ? हम स्यात् ऐसे दिव्य लोकों को देखते जिनकी अपेक्षा हमारा समस्त दृश्यलोक समुद्र तट पर पड़े हुए एक बालू के कण के समान प्रतीत होता। ये लोक कदाचित् असीम आकाश की सीमा तक फैलते चले जाते हैं और अंत में परमात्मा के दिव्यभवन, नित्यप्रभु के सिंहासन, तक पहुँचते हैं।"

हमारे शास्त्रों ने इन लोकों को देखने की युक्ति भी बतलाई है, परतु पाश्चात्य विज्ञान इस विषय में मूक है। देखना चाहिए कि इन लोकों को देखने के इच्छुक प्राचीन मार्ग का अवलंबन करते हैं या कोई नवीन मार्ग बतलाते हैं।

(१७) सृष्टि और प्रलय।

इस अध्याय का विषय अत्यत रोचक और असाधारण महत्त्व का है। आँख से, यंत्रों से और गणित से जो कुछ जाना जा सकता है उस सब पर गभीर विचार करने के उपरात ज्योतिषियों ने इस विषय में सम्मति प्रकट करने का साहस किया है। अभी उनके मत में अनेक परिवर्त्तन होंगे क्योंकि विद्या में नित्य वृद्धि होती रहती है, पर इस समय तक जो मत स्थिर हो सका है उसका दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

इस विषय का दर्शनशास्त्र से भी बड़ा घना सबंध है। वस्तुत यह दार्शनिक विषय है ही। प्रत्येक धर्म्म के प्रधान ग्रथों ने भी इस संबंध में कुछ न कुछ कहा है। कुछ लोग थोड़ी बहुत वैज्ञानिक बातों को जान कर यह समझने लग जाते हैं कि आज कल के पाश्चात्य विज्ञान ने धार्म्मिक सिद्धांतों को झूठा प्रमाणित कर दिया है, पर यह उनकी भूल है। यदि धर्म्म का कोई सच्चा सहायक हो सकता है तो वह विज्ञान है। कई पाश्चात्य लेखकों ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आधुनिक ज्योतिष के सिद्धांत ईसाई धर्म्मग्रंथ बाइबल के अनुकूल हैं। यहाँ मैं भी वैज्ञानिक सिद्धांतों का कथन करता हुआ सनातन धर्म्म के सिद्धांतों के साथ उनकी समता दिखलाने का स्थल स्थल पर प्रयत्न करूँगा।

पहली बात जो ध्यान देने की है वह यह है कि यह विश्व या संसार अनादि और अनंत है। जब तक ईश्वर है, जब तक यह विश्व है, जैसा कि स्वामी विवेकानंद ने शिकागो में लोगों को बतलाया था। हिंदू धर्म्म के अनुसार ईश्वर और संसार दो समानांतर रेखाएँ हैं। हम ऐसा कोई समय नहीं बतला सकते जब कि संसार न था या जब यह न रहेगा। इसलिये विश्व की सृष्टि या प्रलय का कथन हो ही नहीं सकता। हम उसके अंशों की उत्पत्ति और नाश का ही कथन कर सकते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर आलिवर लाज का कथन है—"Nor can any epoch be conceived in time at which the mind will not instantly and automatically require, "and what before" or "what after ?" "हम किसी ऐसे काल की कल्पना ही नहीं कर सकते जब कि हमारा चित्त तत्काल और स्वतः यह प्रश्न न करेगा "इसके पहिले क्या था ?" या "इसके उपरांत क्या होगा ?"

इसलिये यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी वैज्ञानिक पुस्तक में विश्व की सृष्टि या विनाश का कथन नहीं हो सकता। ईश्वर क्या है, उसका सृष्टि से क्या संबंध है ? सृष्टि क्यों हुई ? इत्यादि प्रश्न विज्ञान की सीमा के बाहर हैं।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञान सृष्टि के आदि कारण का ठीक परिचय नहीं दे सकता। जैसा कि लाज महोदय कहते हैं "Ultimateorisims are inscrutable. We must admit that science knows

nothing of ultimate origins" 'आदि कारण अज्ञेय हैं। हमको यह स्वीकार करना चाहिए कि विज्ञान आदिकारणों के विषय में कुछ भी नहीं जानता।'

एक तीसरी बात और ध्यान देने योग्य है। प्राय: वैज्ञानिक लेखों में ईश्वर का नाम कम आता है। इसका कारण यह नहीं है कि वैज्ञानिक ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते प्रत्युत् उनका विश्वास है कि ईश्वर इस विश्व का शासक और नियामक है और इस विश्व का सारा काम उन नियमों के अनुसार चल रहा है जो उसके बनाए हुए हैं या उसके ही रूप हैं। इसीलिये वे बार बार ईश्वर का नाम न लेकर उन नियमों का ही नाम लेते हैं। संभव है कि कोई कोई नियामक को भूल भी जाते हों पर अधिकांश का ऐसा भाव नहीं है। जो वाक्य मैंने स्थान स्थान पर उद्धृत किए हैं उनसे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है। लॉज का कथन है कि "Science has never really attempted to deny the existence of God" "विज्ञान ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने की कभी चेष्टा नहीं की है।"

इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए, हम अब सृष्टि के वैज्ञानिक सिद्धांत की ओर चलते हैं।

वैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि आदि में केवल आकाश था और इसी एक तत्त्व से अन्य सब द्रव्यों की उत्पत्ति हुई है। बीच के क्रमों का ठीक ठीक पता नहीं है पर होते होते वह अवस्था आती है जब कि इस आकाश (ether) का कुछ अंश वाष्प रूप में परिणत हो जाता है। यह वह अवस्था है जिस

के विषय में वेदों ने कहा है 'तत्तेज असृजत'। आकाश के बीच में दूर दूर तक जलते हुए वाष्पों (gases) के समूह बन जाते हैं। ये ही समूह १४ वें अध्याय के नभस्तूप हैं। जैसा कि वहाँ कहा जा चुका है ये जलते हुए वाष्पों के पुंज हैं। ये पुंज कैसे बने, सारे आकाश में एक सा ही वाष्पपुंज क्यों व्याप्त नहीं हो गया इत्यादि ऐसे प्रश्न हैं जिनका ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता है। पर आकर्षण का नियम इन में बराबर काम कर रहा है। प्रत्येक पुंज सम गति से आकाश में चल रहा है।

पाठकों को स्मरण होगा कि इन नभस्तूपों के आकारों में भेद है। कोई कोई तो ओरायन नभस्तूप की भाँति दूर तक फैले हुए हैं और प्रायः आकारहीन हैं। ये स्तूप आदिम अवस्था में हैं। परंतु कइयों के आकार गोल या चक्रवत् हैं। इनकी अवस्था बढ़ी हुई है। इनमें जो वाष्प के जलते हुए कण हैं वे आकर्षण के कारण एक दूसरे के अधिक निकट आ गए हैं। जलता वाष्प अब भी है पर उतना पतला नहीं है प्रत्युत् एक प्रकार से जम रहा है।

ओरायन जैसे एक नभस्तूप को लीजिए। धीरे धीरे इसमें स्थान स्थान पर वाष्प के कण एकत्र होने लगते हैं। यह उस समय होता है जब नभस्तूप वृद्ध होता जाता है। कहीं कहीं बड़े बड़े पुंज बनते हैं और कहीं कहीं छोटे। जो छोटे पुंज हैं वे अपने पास के बड़े पुंजों की ओर आकर्षित होते हैं। ये बड़े पुंज सूर्य्य या तारे हैं और छोटे पुंज ग्रह। एक एक नभस्तूप में, उसके परिमाण के अनुसार, कई तारे बन जाते हैं। अकेले

ओरानय में से समय पाकर स्यात् सहस्रों निकलेंगे। एक ही नभस्तूप में से बनने के कारण ये सब तारे जिस ओर वह जाता है उसी ओर जॉयगे। इसी कारण ताराप्रवाह (देखिए अध्याय १३) बन जाते हैं।

अब इनमें से किसी एक तारे को लीजिए। वह अत्यंत दीप्त वाष्पों का पुंज है और उसके साथ उसीके सदृश कई छोटे छोटे पिंड हैं। ये वाष्प कई प्रकार के होते हैं पर इनमें हीलीयम (Helium) का आधिक्य है। इसी लिये इनको हीलियम तारे (Helium Stars) भी कहते हैं। इनका रंग नीलयुक्त श्वेत होता है।

जब ये वाष्प कुछ और एकत्र हो जाते हैं और तारा घना हो जाता है तो यह नीलापन जाता रहता है और उसका रंग शुद्ध श्वेत देख पड़ता है। अब यह तारा शिशु से बालक हो गया। इस में अब हीलियम का आधिक्य भी नहीं है।

क्रमशः यह तारा और ठोस होने लगता है। इसके ऊपर अब वाष्पों का उतना विस्तार नहीं है। यह संभव है कि इसके चारों ओर लाखों कोस तक अब भी जलता हुआ वाष्प फैला हुआ हो पर यह फैलाव पहले की अपेक्षा बहुत कम है। अभी तक वाष्पों ने अपनी अवस्था नहीं परिवर्तित की है पर अब वे पहले की अपेक्षा और घनी हैं। अब इनमें उतना ताप भी नहीं है और न उतना प्रकाश ही है। यह तारा अब प्रौढ़ या युवा हो गया है। इसका रंग अब श्वेत से पीत देख पड़ता है। हमारा सूर्य्य भी इसी प्रकार का एक युवा तारा है।

धीरे धीरे इसकी अवस्था और परिणत होती है। यह अब अधेड़ हो चला है और बहुत कुछ ठोस हो गया है। इसमें ताप और प्रकाश दोनों की मात्रा बहुत कम हो गई है। देखने में इसका रंग लाल प्रतीत होता है। ज्यों ज्यों यह ठढा होता जाता है रंग में कालिमा आती जाती है यहाँ तक कि वह गहरा लाल हो जाता है।

होते होते इस अवस्था की भी समाप्ति होती है। तारा एक मात्र वृद्ध और मृतप्राय हो जाता है। उसकी दशा सवेरे के दीपक के समान हो जाती है। कभी तो यह चमक उठता है और कभी फिर बुझ सा जाता है। इस समय यह विकारी तारे के रूप में देख पड़ता है। पर कुछ काल में (यह कुछ काल लाख दो लाख साल का हो सकता है) इसकी यह शक्ति भी क्षीण हो जाती है और यह एक अँधेरा मृत सूर्य्य हो जाता है,। इतने दिनों तक इस पर कभी सृष्टि थी या नहीं और यदि थी भी तो कब थी और कब उसका अभाव हो गया यह नहीं कहा जा सकता। पर हाँ हम को यह कहने का अधिकार नहीं है कि ऐसे पिंडों पर किसी प्रकार की सृष्टि हो ही नहीं सकती।

मृत होने पर भी इसका अस्तित्व बहुत दिनों तक रह सकता है। इसका अंत किस प्रकार होगा इस विषय में कई संभवनाएँ हैं। यह किसी नभस्तूप या छोटे छोटे उल्कोपम पिंडों से उलझ पड़े। उस समय यह फिर जल उठेगा और संभव है कि फिर वाष्पों मे परिणत हो जाय या आकाश में घूमता घूमता वह किसी अन्य जीवित या मृत सूर्य्य से टकरा जाय। उस समय भी इसका नाश हो जायगा और यह भस्म

हो कर वाष्प रूप में परिणत हो जायगा। कम से कम इसके टुकड़े छोटे छोटे उल्कोपम पिंडों के सदृश हो जाँयगे।

यह एक सूर्य्य का जीवनचरित्र है। यह वृत्तांत कल्पित नहीं है। हम किसी एक तारे की तो ये सब अवस्थाएँ नहीं देख सकते पर इन सब अवस्थाओं के भिन्न भिन्न पिंड हमारे सामने हैं। नभस्तूप, नील शुभ्र तारे, श्वेत तारे, पीले तारे, लाल तारे, श्याम-लाल तारे, मृत तारे, भस्म होते हुए तारे (जो हमको अल्पकालिक तारों के रूप में देख पड़ते हैं) सब ही दृष्टिगोचर होते हैं। रश्मिविश्लेपक यंत्र पग पग पर हमारी बातों का समर्थन करता है। सब तारों की एक सी ही उत्पत्ति हुई है। छोटी छोटी बातों में भेद होते हुए भी मूल क्रम एक ही है, जैसा कि वेदों का कथन है "सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" और विनाश भी सब का लगभग एक ही प्रकार से होगा। हमारा सूर्य्य अभी प्रौढ़ पीला तारा है, एक दिन यह भी लाल अँधेरा हो कर इसी भाँति नाश होगा। इसके भस्म होते समय, किसी अन्य सूर्य्य के किसी ग्रह के ज्योतिषी एक अल्पकालिक तारा देखेंगे और बस!

१३ वें अध्याय में यह लिखा गया है कि प्रायः एक रंग के तारे आकाश में पास पास देख पड़ते हैं। कहीं लाल तारे अधिक हैं, तो कहीं श्वेत ही श्वेत हैं, इत्यादि। इसका समझना कुछ कठिन नहीं है। रंग से तारों के वय का पता लगता है। एक रंग के तारे समवयस्क हैं। ये प्रायः एक ही साथ उत्पन्न हुए हैं और अब एक ही अवस्था में हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रायः होता ही होगा कि एक या समान् नभस्तूपों

से एक साथ ही बहुत से सूर्य्य बनते होंगे। यदि इनके वय में दो चार लाख वर्ष का अंतर हुआ भी तो उससे कोई आपत्ति नहीं होती। आदि में ये सभी श्वेत, फिर पीले, फिर लाल होते होंगे।

अब एक ग्रह को लीजिए। इसकी भी उत्पत्ति तारे की ही भाँति एक नभस्तूप से हुई है। यह भी एक छोटा सा तारा ही है अतः इसका जीवनचरित्र भी वैसा ही होना चाहिए था। यह बात सत्य है। पर तारे और ग्रह के जीवनों में जो भेद होते हैं उनके दो प्रधान कारण हैं। एक तो ग्रह छोटा होता है, इसलिये उसमें परिवर्त्तन बहुत शीघ्र होते हैं। दूसरे वह एक तारे के साथ बँधा हुआ है। यह तारा या सूर्य्य इसके जीवन पर बड़ा प्रभाव डालता है और उसको तारों के जीवन से भिन्न बना देता है।

आदि में यह ग्रह भी एक तारे के समान है। यह भी वाष्पों का पिंड है। इसका भी रंग श्वेत है और यह भी तप्त और भास्वत् है। ऐसा प्रतीत होता है कि बड़े सूर्य्य की परिक्रमा एक छोटा सूर्य्य कर रहा है। उदाहरण के लिये हम अपनी पृथ्वी को ही लेते हैं। उस समय इसको अक्षभ्रमण में कुल ३ या ४ घंटे लगते थे। अब २४ लगते हैं। धीरे धीरे यह काल बढ़ता ही जायगा।

धीरे धीरे इसने ठोस होना आरंभ किया। अब यह क्रमशः पीले और लाल सूर्य्यों की अवस्था को पहुँची। इसकी भास्वता धीरे धीरे जाती रही पर ताप अब भी बहुत था। इसके ऊपर अब भी वाष्प घेरे हुए थे। पर ये वाष्प पहले

के सदृश न थे प्रत्युत् घने थे। इसके बीच में का भाग क्रमशः ठोस हो गया था।

जब यह कुछ और ठंडी हुई तो इनमें से कई वाष्प तरल रूप में परिणत हुए। विज्ञान और शास्त्र दोनों ही तेज से आपः की उत्पत्ति बतलाते हैं। यह तरल द्रव्य या पानी नीचे गिरता था पर तप्त ठोस भाग से उचट कर फिर ऊपर उड़ जाता था। इस प्रकार निरंतर पानी का बरसना और बादलों का बनना आरंभ हुआ। उस समय पृथ्वी की अवस्था नेपचून, शनि और गुरु की सी थी। ये बड़े पिंड होने के कारण अभी पृथ्वी से पीछे पड़े हुए हैं। उस समय तक इन घने बादलों के कारण सूर्य्य, चंद्रमा, तारे आदि अदृश्य थे। इसलिये तब न दिन था न रात्रि थी। सदैव एक सी ही अवस्था थी। तब ऋतु भी सारी पृथ्वी पर एकसी थी क्योंकि सूर्य्य का प्रभाव पड़ता ही न था, केवल पृथ्वी का ही ताप काम कर रहा था।

क्रमशः पृथ्वी का पृष्ठ ठंढा हुआ, अब जो वाष्प में बादल थे उनसे जो जल गिरता था वह उड़ कर फिर भाप नहीं बनता था प्रत्युत् पृथ्वी में स्थान स्थान पर एकत्र होने लगा। जहाँ जहाँ यह एकत्र हुआ वहाँ वहाँ समुद्र बन गए। समुद्रों के बनने पर बादल कम हुए और सूर्य्यादि के दर्शन हुए। उस समय से पृथ्वी के लिये दिन, रात, मास और वर्ष आदि की उत्पत्ति और स्थिति हुई। वेदमंत्र कहता है "ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रो अर्णवः, समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत" यह क्रम पूर्णतया विज्ञान के अनुकूल प्रतीत होता है।

इसके उपरांत पृथ्वी में जो परिवर्त्तन हुए, उनका ज्योतिष से विशेष संबंध नहीं है। ये बातें भूगर्भविद्या (Geology) और जीवशास्त्र (Biology) के अंतर्गत हैं। विज्ञान के ये विभाग हमको बतलाते हैं कि किस प्रकार पृथ्वी पर क्रमशः नदियों, पहाड़ों, चट्टानों की रचना हुई और भूतल धीरे धीरे क्रमशः कीट, जलचर नभचर और स्थलचर आदि के योग्य होता हुआ मनुष्यों के बसने योग्य हो गया। यह पृथ्वी की प्रौढ़ावस्था है और हम इसकी इस अवस्था में इस पर निवास कर रहे हैं।

कुछ दिनों में यह दशा भी जाती रहेगी। पृथ्वी पर वायु और जल की कमी हो जायगी। उस समय वह मंगल की अवस्था को प्राप्त होगी। यह दूसरा प्रश्न है कि उस समय इस पर मंगल के समान बुद्धिमान व्यक्ति होंगे या नहीं जो उस थोड़े जलवायु से लाभ उठा सकें।

जब पृथ्वी पर इस जलवायु का भी अभाव हो जायगा तो वह बुध के समान एक मृत जगत् हो जायगी।

ज्योतिषियों का मत है कि पृथ्वी की उत्पत्ति से इस समय तक कई लाख वर्ष हो चुके हैं और अभी इसे मृत होने में कई लाख और लगेंगे। हिंदूशास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं। भेद इतना ही है कि शास्त्र इन वर्षों की संख्या बतलाते हैं और विज्ञान संख्या बतलाने का साहस नहीं करता।

पृथ्वी का अंत किस प्रकार होगा? जहाँ तक प्रतीत होता है यह भस्म हो कर ही नाश होगी। यह भस्म होना कई प्रकार से हो सकता है। जब हमारा सूर्य्य वृद्ध हो जायगा

तो, जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह मृत होने के पहले कभी तो उँझते हुए दीपक के समान भभक उठेगा और कभी ठंढा सा हो जायगा । १३ वें अध्याय में भी विकारी तारों का कथन करते हुए हमने एक तारे का वर्णन किया था जो कि एकाएक भभक उठा और जिसमें हाइड्रोजन की प्रतीति हुई। जब सूर्य्य भभकेगा तो उस समय उसमें से बड़ी ज्वालाएँ निकलेंगी और उस ताप से पृथ्वी भस्म हो कर वाष्प हो जायगी । यदि इससे बच भी जाय तो जब कभी सूर्य्य किसी प्रकार के भी पिंड से टकराएगा तो यह स्वाहा हो जायगी। जो कुछ हो, प्रलय के समय इसको अनेक सूर्य्यों की ज्वालाएँ सहन करनी पड़ेंगी जैसा कि पुराणादि भी कहते हैं। हाँ, उस समय इस पर किसी प्रकार के प्राणी होंगे या नहीं, इस प्रश्न का ठीक उत्तर विज्ञान नहीं दे सकता । वह इतना ही कहता है कि वह ऐसे प्राणियों का कल्पना भी नहीं कर सकता ।

यही गति एक न एक दिन सब ग्रहों की होती है । हमारे सौरचक्र में ही सब अवस्थाओं के ग्रह पाए जाते हैं ।

अब उपग्रहों को लीजिए । उदाहरण के लिये हम अपने चंद्रमा को लेते हैं । ज्योतिषियों का ऐसा विश्वास है कि जिस समय पृथ्वी वाष्परूप में थी उसी समय उस में से एक टुकड़ा टूट कर अलग हो गया । यही टुकड़ा चंद्रमा हो गया। संभव है कि इसी प्रकार सूर्य्य में से टूट कर कोई कोई ग्रह भी निकले हों । अस्तु, कुछ लोगों का मत है कि जहाँ आज कल शांत महासागर (Pacific ocean) (जापान और अमेरिका के बीच में) है वहीं से यह निकला है और इसको अलग हुए

५७०००००० वर्ष हुए। अस्तु जो कुछ हो, पृथ्वी से अलग होने पर इसका जीवन वैसा ही हुआ होगा जैसा कि ग्रहों का होता है, परंतु इसके छोटे होने के कारण वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। अंत भी इसका संभवतः वैसा ही होगा जैसा कि पृथ्वी का होगा और आश्चर्य्य नहीं कि उसी समय हो। कुछ ज्योतिषियों का यह भी मत है कि पृथ्वी का वेग अब कम हो रहा है और वह सूर्य्य की परिक्रमा में क्रमशः अधिक समय लेती है। इसलिये वह कुछ कुछ सूर्य्य के निकट भी आती जाती है और एक दिन चंद्र के साथ सूर्य्य में ही जा गिरेगी। इन बातों का कोई स्पष्ट प्रमाण न होने से कोई एक बात स्थिर कर के नहीं कही जा सकती।

यह जो कुछ ऊपर कहा गया है एक दिग्दर्शन मात्र है। इनमें से कुछ बातों के तो प्रत्यक्ष प्रमाण हैं और कुछ केवल अनुमान के आधार पर कही गई हैं। संभव है कि भविष्य में हम को इन बातों का और भी अधिक और निर्विवाद ज्ञान हो जाय।

जैसा किसी ने कहा है ' In the universe there are both cradles and graves' 'इस विश्व में पालने और समाधियाँ दोनों हैं'। हम अपनी आँखों से दोनों को ही देखते हैं।

यहाँ पर एक प्रश्न हो सकता है ' हमने जलते वाष्पों से सृष्टि होते देखी और यह भी देखा कि अंत में प्रलय होने पर फिर वाष्प ही रह जाते हैं। परंतु यह तेज या वाष्प आकाश तत्त्व से कैसे बना। यह माना कि तैजस द्रव्यों में आकर्षण नियम काम कर रहा है, पर क्या वह इसके पहले भी काम करता था। यदि नहीं तो वह कब आया ? आकाश तत्त्व

क्या है ? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई। वह स्वयं अब कभी किसी और पदार्थ में परिणत वा लीन होगा या नहीं। इन प्रश्नों का उत्तर भौतिक-विज्ञान (Physics) देना चाहता है पर अभी वह सफलता से कोसों दूर है। इतना ही नहीं, कई बड़े बड़े आचार्य्य इन प्रश्नों का निरी वैज्ञानिक रीति से उत्तर देना असंभव सा मानने लगे हैं। ज्योतिष ने इस क्षेत्र में पैर ही नहीं बढ़ाया है।

धर्मशास्त्रों ने इन प्रश्नों का भी उत्तर दिया है। जब तक वैज्ञानिक अन्वेषण उनको झूठा न प्रमाणित कर दे (और इस बात के कोई लक्षण देख नहीं पड़ते) तब तक विज्ञान का नाम ले कर शास्त्रों को झूठा कहना अपने को मूर्ख बतलाना है जैसा कि किसी ने कहा है "Fools rush in where angels fear to tread" "जहाँ देवों को भी पैर रखने का साहस नहीं होता वहाँ मूर्ख घुस पड़ते हैं।"

इस संबंध में हमको एक ज्योतिषी के शब्द याद आते हैं। सृष्टि के उपर्युक्त क्रम का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं "Science cannot go beyond that; it can only with all reverence indicate the method by which the Creator has brought into existence this stupendous Universe" इसके आगे विज्ञान नहीं जा सकता। वह केवल ससंभ्रम उस रीति को इंगित कर सकता है जिससे ईश्वर ने इस वृहत् विश्व का सृजन किया है।"

१८—दिग्विजेता (विदेशीय)।

यहाँ तक हमने ज्योतिष के प्रधान सिद्धांतों और ज्ञातव्य बातों का दिग्दर्शन किया है परंतु उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों का भी कुछ वृत्तांत जानना आवश्यक है जिन्हों ने हमारे ज्ञान को इस सीमा तक पहुँचाया है। बिना ज्योतिषियों के जीवन को संक्षेप से जाने हम इस विद्या के महत्व को भी पूरी तरह नहीं समझ सकते।

जो पुरुष किसी नए देश का पता लगाता है, जो योद्धा शत्रु सेना के बीच में घुस कर असाधारण वीरता का परिचय देता है, जो शासक कोई ऐसी युक्ति निकालता है जिससे जनता की सुखसमृद्धि की वृद्धि होती है, वे सब हमारी श्रद्धा के भाजन हैं। हम उनका आदर करते हैं, उनके स्मारक बनाते हैं, उनको अपना आदर्श मानते हैं। हमारा यह भाव सर्वथा समुचित और श्रेयस्कर है। परंतु हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि जो लोग अपने जीवन वैज्ञानिक तत्त्वों की विवृत्ति में अर्पण कर देते हैं वे कम सम्मान के पात्र नहीं हैं। उनके जीवनचरित भी उसी उत्साह, सत्यप्रियता, धैर्य, उदारता आदि के आदर्शों से परिपूर्ण हैं। संतोष और निःस्वार्थता के वे मंदिर हैं। उनमें से कितनों को निर्धनता, अपमान, तिरस्कार, देशबहिष्कार आदि कष्ट सहने पड़े हैं। इतना ही नहीं, इनमें से कुछ विद्या के उपासकों, सरस्वती के

सच्चे भक्तों को, इस ज्ञानयज्ञ में अपने प्राणों की भी आहुति देनी पड़ी है।

परंतु उनके इस आत्म-बलि का ही यह फल है कि ससार में विद्या की इतनी उन्नति देख पड़ती है। अब वे दिन चले गए जब लोग वैज्ञानिकों को मार डाला करते थे, पर उन्होंने समाज मे अब भी वह सर्वश्रेष्ठ स्थान नहीं पाया है जो उनका होना चाहिए।

यह दशा पाश्चात्य देशों की है। भारत में विद्वानों का सदैव समुचित आदर होता रहा है, हाँ आज कल हमारे अध पतन के दिनों में हम इस धर्म्म का भी परित्याग कर बैठे हैं।

अस्तु, अब प्रधान प्रधान ज्योतिषियो का कुछ जीवनवृत्तात दिया जायगा। सुभीते के लिये पहले विदेशी ज्योतिषियों का ही कथन होगा। भारत में ज्योतिष ने बड़ी उन्नति की पर कई कारणों से उन्नति का स्रोत बद हो गया। इसके विरुद्ध भारत के बाहर परंपरा अभी तक चली जा रही है। जहाँ एक देश पीछे हटता है, दूसरा उसके स्थान में आ खड़ा होता है।

वृत्तांत आरंभ करने के पहले इतना और कहना है कि मैंने ज्योतिषियों के लिये दिग्विजेता शब्द बहुत ही सोचकर प्रयुक्त किया है। यदि ज्योतिषी लोग दिग्विजयी नहीं कहला सकते तो पृथ्वी पर कोई भी इस पदवी का अधिकारी नहीं है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ज्योतिष ने फारस के पश्चिम मेसोपोटेमिया प्रांत में किसी समय मे बड़ी उन्नति

की थी, परंतु उस समय के किसी प्रसिद्ध ज्योतिषी का पता नहीं लगता। किसी प्रकार कालचक्र ने यूनान को सभ्यता का घर बनाया और अन्य विद्याओं के साथ साथ वहाँ ज्योतिष ने भी उन्नति की। अरिस्टाटल (Aristotle) ने जो पूर्वीय जगत् में अरस्तू नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, ज्योतिष के विषय में कई सिद्धांत स्थिर किए और उनके पीछे हिप्पार्कस (Hipparchus) ने इस विद्या में नाम किया। इन्होंने आकाश के सभी प्रधान तारों की और उनके स्थानों की एक सूची बनाई। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यह इस प्रकार की प्रथम सूची थी। हिप्पार्कस का देहांत ईसा के १२० वर्ष पहले हुआ।

मिश्र देश किसी समय में एक बड़ा सभ्य देश था परंतु कुछ काल में अवनति को प्राप्त हुआ और वहाँ यूनानियों का प्रभाव बढ़ने लगा। इनमें टालेमी (Ptolemy) बड़े भारी ज्योतिषी हो गए हैं। इसके सिद्धांतों को टालेमेइक सिद्धांत (Ptolemaic System) कहते हैं। इसका विश्वास यह था कि पृथ्वी बीच में स्थिर है और चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य्य मंगल, गुरु, शनि और तारे यथाक्रम उसकी परिक्रमा करते हैं। परंतु इस भाँति मानने से ग्रहों की गति ठीक ठीक समझ में नहीं आती थी। इसलिये फिर यह माना गया कि ये पिंड स्वयं तो कल्पित विंदुओं की परिक्रमा करते हैं और ये विंदु पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। फिर भी व्यतिक्रम पड़ता रहा और यह मानना पड़ा कि ग्रह तो विंदुओं की परिक्रमा करते हैं, विंदु अन्य विंदुओं की परिक्रमा करते हैं और ये अन्य विंदु पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार चक्र,

उपचक्र, (epicycle) उपोपचक्र आदि की संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि बड़े बड़े विद्वान् भी इसको कठिनाई से समझ पाते थे। एक बार स्पेन के बादशाह आल्फोंसो ने, जिसको ज्योतिष से बड़ी अभिरुचि थी घबरा कर कहा—"यदि ईश्वर ने सृष्टि के समय मुझ से पूछा होता तो मैं कई उपयोगी बातें बता देता।" टालेमी ईसा के लगभग १५० वर्ष पीछे मरे।

धीरे धीरे यूनानियों का भी पतन हुआ और साथ ही साथ विद्या का भी ह्रास हो गया परंतु इसी समय के लगभग अरब में मोहम्मद साहब ने मुसल्मान धर्म्म की शिक्षा देनी आरंभ की। उस शिक्षा से प्रभावित हो कर अरब लोग एक जगद्विजयी जाति हो गए। राजनैतिक उन्नति के साथ साथ उन्होंने विद्या में भी बड़ी उन्नति की। यूनानियों के ग्रंथों को अध्ययन करके उन्होंने स्वयं कई नूतन विवृतियाँ कीं और सैकड़ों वर्ष तक युरोप की जातियों के वे आचार्य्य रहे। उनको गणित करने में भी एक सुभीता था, उन्होंने हिंदुओं से संख्याओं के लिखने की युक्ति सीख ली थी। हमारे यहाँ स्थानभेद से अंक का मान बढ़ जाता है। जैसे १११ को लीजिए इसमें तीनों स्थानों में १ ही है, लेकिन प्रथम स्थान में यह केवल १ के ही बराबर है, द्वितीय में १० के बराबर है, और तृतीय में १०० के बराबर है। इस युक्ति से गुणा और भाग करने में बड़ा सुभीता होता है। अरबवालों ने हिंदुओं से सीख कर इसे युरोप में फैलाया, इसी लिये इन्हें हिंदू संकेत (Hindu Notation) कहते हैं। युरोप की प्राचीन प्रथा बड़ी भद्दी थी, उसके अनुसार प्रत्येक संख्या के लिये अलग अलग अंक लिखने पड़ते थे।

एक सौ ग्यारह लिखना हो तो CXI लिखना होगा। इससे लंबे प्रश्नों में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। अरबवालों में इब्नजूनिस, अबुल वफा और समरकंद के बादशाह उलुगबेग प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गए हैं। उलुगबेग को उनके लड़के ने सन् १४४७ ईसवी में मार डाला।

इस दुर्घटना के २६ वर्ष पीछे एक ऐसे व्यक्ति का जन्म हुआ जिन्होंने ज्योतिष का गंभीर कायापलट कर दिया। इन महापुरुष का नाम कापर्निकस था। ये सन् १४७३ में थार्न नगर में पैदा हुए। इनके पिता एक साधारण व्यापारी थे। इन्होंने वैद्यक, चित्रकारी, दर्शनशास्त्र, गणित और ज्योतिष की शिक्षा पाई और अंत में वे रोम में गणित के अध्यापक नियत हुए। कुछ दिनों यहाँ रह कर ये पोलैंड में फाइनबर्ग नगर के बड़े गिर्जा में धर्म्म-शिक्षक नियुक्त हुए। यहाँ इनको ज्योतिष का अध्ययन करने का अच्छा अवकाश मिला।

इन्होंने विचार करके देखा कि प्रकृति के सब ही कार्य्य अत्यंत सरल नियमों के अनुसार होते हैं, इसलिये इनको टालेमी के दुर्बोध सिद्धांत की सत्यता पर संदेह हुआ। बहुत विचार के उपरांत इन्होंने यह निश्चय किया कि पृथ्वी के अक्षभ्रमण से दिन रात होते हैं और वह अन्य ग्रहों के साथ सूर्य्य की परिक्रमा करती है। इनके सिद्धांत में उस समय दो दोष आते थे। उस समय के ज्योतिषियों का यह कहना था कि यदि पृथ्वी शुक्र और मंगल के बीच में घूमती है तो बुध और शुक्र के भी चंद्रमा के समान भिन्न भिन्न समयों पर रूप-परिवर्त्तन देख पड़ने चाहिएँ। उस समय यंत्रों के अभाव

से इस परिवर्तन का कोई प्रमाण न था पर कापर्निकस ने साहस और श्रद्धा के साथ उत्तर दिया "ईश्वर ऐसे यंत्र बनवाएगा जो इन बातों को दिखलाएँगे", उनका कथन, उनकी मृत्यु पीछे सत्य निकला। दूसरा दोष यह था कि यदि पृथ्वी घूमती है तो तारों में कृत्रिम स्थान-भेद देख पड़ना चाहिए। यह बात भी अब देख ली गई है।

कापर्निकस ने अपने सिद्धांतों को बहुत दिनों तक ग्रंथ रूप से प्रकाशित न किया पर उनकी प्रसिद्धि दूर तक हो गई थी और कितने ही लोग उनके पास ज्योतिष पढ़ने के लिये आते थे। अंत में अपने एक विद्यार्थी रेटिकस के आग्रह से उन्होंने ग्रंथ छपवाना स्वीकार किया और १५४३ में उनका 'डि रेवुल्यूशनिबस आर्बियम सीलेसटियम' छप गया। खेद की बात है कि उसकी पहली प्रति पाने के कुछ ही घंटे भीतर ७० वर्ष की अवस्था में उसके पूज्य लेखक का शरीरांत हो गया।

इसमें संदेह नहीं कि कापर्निकस एक बड़े ही भारी ज्योतिषी थे पर उन्होंने केवल एक सिद्धांत स्थिर किया था। स्वयं उन्होंने ग्रहों या तारों का अवलोकन कर के कोई नई विवृत्ति न की थी और न गणित ज्योतिष में ही कोई विशेष बात निकाली थी। उनकी मृत्यु के तीन वर्ष पीछे सन् १५४६ में डेन्मार्क के एक भद्र कुटुंब में एक बालक का जन्म हुआ जिसने ज्योतिष की सच्ची नींव, आकाशावलोकन, की अत्यंत पुष्टि की। इस भव्य पुरुष का नाम टाइको ब्रेही (Tycho Brahe) था। इनके घर के लोग इनको क़ानून

पढ़ाना चाहते थे। इनके आचार्य्य वेडल को इस बात का कड़ा निर्देश था कि वे इनको ज्योतिष न पढ़ने दें क्यों कि उस समय ज्योतिष एक तुच्छ विषय समझा जाता था जिसका पढ़ना एक भद्र पुरुष के लिये अयोग्य था। पर टाइखो अपने मास्टर के सो जाने पर चुपके चुपके ज्योतिष पढ़ा करते। अंत में उनके चचा की मृत्यु ने उनको इसे खुल कर पढ़ने के लिये स्वतंत्र कर दिया।

सन् १५७२ में एक नया तारा देख पड़ा, इसने टाइखो की अभिरुचि की और भी वृद्धि की। उन्होंने इस के विषय में एक पुस्तक लिखी। यह बात उनके संबंधियों के लिये अत्यंत अरुचिकर हुई क्योंकि उस समय पुस्तकों का लिखना भद्र-पुरुषों के लिये अप्रतिष्ठाकारक समझा जाता था।

टाइखो ने देश छोड़ने का विचार किया परंतु डेन्मार्क के बादशाह फ्रेड्रिक, ने सोचा कि यदि इन्होंने देश छोड़ दिया तो हमारे देश को बड़ा कलंक लगेगा। इसलिये उसने समझा बुझा कर इन्हें रोक लिया। उनको हेन का टापू वेधालय बनाने के लिये दिया गया और राजकोष से एक पेंशन भी मिलने लगी।

यहाँ टाइखो ने कुछ दिनों शांतिपूर्वक बड़े ही उपयोगी कार्य्य किए। उन्होंने तारों की एक नई सूची बनाई और यह बतलाया कि केतु वस्तुतः ग्रहों की सदृश गतिवाले हैं। ये कापर्निकस के विरोधी थे। इनका विश्वास था कि बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि तो सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं परंतु सूर्य्य, चंद्र और सब तारे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं।

इनकी इतनी प्रसिद्धि थी कि इनके जीवनकाल में कितने लोगों ने केवल उनके कथन के आधार पर कापर्निकस को बेठीक मान लिया परंतु उनकी मृत्यु के पीछे स्वयं उन्हीं के कागज़ों से, जिनमें उन्हों ने ग्रहों की गतियाँ लिख रक्खी थीं, कापर्निकस के वाक्यों की पुष्टि हो गई। यदि टाइखो ने इतना परिश्रम न किया होता तो कापर्निकस के सिद्धांत के माने जाने में और देर लगती। उनको अपने कार्य्य के लिये ऐसी श्रद्धा थी कि जब वे आकाश के पिंडों का अवलोकन करने जाते थे तो ससंभ्रम दर्बारी कपडे पहन लिया करते थे।

ह्वेन टापू में टाइखो २० वर्ष सुखपूर्वक रहे। १५९७ में डेन्मार्क के बादशाह क्रिश्चियन ने (जो अपनी पिता के पीछे गद्दी पर बैठे थे) शासन का काम सँभाला तो टाइखो पर कई दोष लगाए गए। उनके सुपुर्द एक गिर्जा का प्रबंध कर दिया गया था परंतु उन्हों ने उसकी मरम्मत नहीं कराई, इत्यादि। उनकी पेंशन बंद कर दी गई और वे देश छोड़ने पर बाधित हुए। एक बार उन्हों ने क्षमा की प्रार्थना भी की पर उस मदांध बादशाह ने उसे स्वीकार न किया। अंत में कई जगह घूम कर, इन्होंने जर्मनी के अंतर्गत बोहीमिआ राज्य के प्रेग नगर में निवास लिया। वहां के बादशाह रुडाल्फ ने भी इनका बड़ा सम्मान किया।

परंतु स्वदेश का वियोग टाइखो से सहन न हो सका, उनका वय चौवन वर्ष का ही था पर चिंता ने उन्हें वृद्ध कर दिया था और सन् १६०१ में उन्होंने शरीर त्याग किया।

मृत्यु के कुछ ही काल पहले उन्हों ने ये शब्द कहे थे "कहीं ऐसा न हो कि मेरा जीवन व्यर्थ पाया जाय।"

अब आगे का वृत्तांत लिखने के पहले मैं दो तीन बातों को बतला देना चाहता हूँ जिनका जानना अवश्यक है क्योंकि इन बातों ने युरोपीय ज्योतिषयों के जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है।

—

इसाइयों में तीन प्रधान संप्रदाय हैं। एक तो ग्रीक-चर्च जिसका प्रभाव रूस, सर्विया, ग्रीस आदि में है। दूसरा रोमन कैथोलिक चर्च जिसका प्रभाव इटली, फ्रांस, स्पेन आदि में अधिक है और तीसरा प्रोटेस्टेंट चर्च जिसके अनुयायी विशेषतः इंग्लैंड, जर्मनी और हालैंड आदि में हैं। आज से ५०० वर्ष पहले प्रोटेस्टेंट चर्च का नाम भी न था, लूथर इसके परिचालक थे। कुछ दिनों तक कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट लोगों में बडा झगड़ा चला। भीषण लड़ाइयाँ हुईं, मनुष्य जला दिए गए और नगर उजाड़ दिए गए। कैथोलिक मत के प्रधान आचार्य्य को पोप कहते हैं। उस समय पोपों के हाथ में बड़ा अधिकार था। इन्होंने अपनी ओर से एक गुप्त सभा खोली थी जिसका नाम इन्क्विज़िशन था। इसकी शाखाएँ प्रत्येक नगर में थीं। इसको अधिकार था कि जिस पुरुष को कैथोलिक धर्म्म का विरोधी समझें उसको जो दंड चाहें दें। बड़े बड़े बादशाह इनसे काँपते थे।

इतना कह कर हम फिर ज्योतिषियों की ओर आते हैं। कापर्निकस के पीछे एक ज्योतिषी हुए जिनका नाम जिआर्डेनो ब्रूनो था। इन्होंने कापर्निकस के सिद्धांत का बड़े उत्साह

से प्रचार करना आरंभ किया। एकाएक इन्क्विज़िशन की समझ में यह बात आई कि यह सिद्धांत कैथोलिक धर्म्म के विरुद्ध है। इन्होंने ब्रूनो से कहा कि वे सब के सामने इस मत को झूठा स्वीकार कर लें। इन्होंने यह बात न मानी। इस अपराध पर इस वीर सत्यप्रिय ज्योतिषी को सन् १६०० में इन्क्विज़िशन ने रोम में जीता जला दिया! धन्य है उस धर्म्म को जिसके नाम पर ऐसे अत्याचार किए जा सकते हैं।

पर इतने ही से उसको शांति न हुई। जैसा हम अब दिखलाएँगे उसने और भी कई घृणित कार्य्य कर के अपनी धर्म्मनिष्ठा का परिचय दिया।

सन् १५६४ में ईसा नगर में गैलिलिओ डि गैलिलिआई (Galileo de Galilei) का जन्म हुआ। ये भी टाइको की भाँति एक भद्र पुरुष के लड़के थे। इनके पिता इनको वैद्यक पढ़ाना चाहते थे, पर इन्होंने हठ करके गणित पढ़ी और २५ वर्ष के होने पर ईसा की युनिवर्सिटी में ये गणित के अध्यापक हुए। यहाँ इन्होंने एक नामी काम किया। अरस्तू का यह कथन था कि यदि दो वस्तुएँ एक साथ ही नीचे को छोड़ी जाँय तो उनमें से जो भारी होगी वह पहले गिरेगी। गैलिलियो ने दो वस्तुओं को गिरा कर प्रत्यक्ष प्रमाण से यह दिखला दिया कि दोनों साथ ही गिरेंगी। जो लोग आकर्षण सिद्धांत को समझ गए हैं उनको यह बात समझने में कठिनाई न होगी।

पाठकों को परों या कागज के पतले टुकड़ों का

उदाहरण न लेना चाहिए। उनको हवा गिरने से रोकती है।

लोगों को चाहिए था कि इस बात से वे प्रसन्न होते पर वे उल्टे अप्रसन्न हुए और अंत में गैलिलियो को ईसा छोड़ना पड़ा।

सन् १५९२ में वे पेडुआ में गणित के अध्यापक नियत हुए। यहाँ सन् १६०२ में उन्होंने धर्ममात् यंत्र (thermometer) जिससे गर्मी या बुखार नापते हैं, निकाला।

गैलिलियो कापर्निकस के अनुयायी थे पर अभी तक वे ज्योतिष के लिये कुछ न कर सके थे, अब इसका भी समय आ गया। एक डच चश्मेवाले ने कुछ चश्मे के तालों को मिला कर एक प्रकार का दूरदर्शक यंत्र बनाया था। इस बात की सूचना पाते ही गैलिलियो भी इसी प्रयत्न में लगे और अंत में उन्होंने एक अच्छा यंत्र बना लिया। इस प्रकार के यंत्र को अब भी गैलिलियन टेलिस्कोप (Galilean telescope) या गैलिलियो का दूरदर्शक कहते हैं। यद्यपि यह यंत्र आज कल के यंत्रों की तुलना नहीं कर सकता परंतु उस समय के लिये अद्वितीय था और इसके द्वारा कई नई विज्ञप्तियाँ हुईं।

पहली बात जो गैलिलियो के यंत्र से देखी गई वह यह थी कि आकाशगंगा वस्तुतः तारों का समूह है। इसी प्रकार आकाश के अन्य भागों में भी आँख की अपेक्षा अधिक तारे देखे गए। फिर गैलिलियो ने गुरु के उपग्रहों और शनि के वलयों को देखा। इसका कथन पहले भी आ चुका है। शुक्र के रूपों का परिवर्तन देख कर उन्होंने

कापर्निकस के सत्य होने का पूरा प्रमाण दे दिया। सूर्य्य पर के धब्बे और चंद्रमा के पहाड़ों को भी उन्होंने देखा था।

इतने थोड़े काल में इसके पहले कदाचित् ही कभी इतनी विवृत्तियाँ हुई होंगी। लोग इन बातों से आश्चर्य में आ गए। धीरे धीरे इन्‌किज़िशन ने गैलिलियो पर अपनी कृपा-दृष्टि डाली परंतु कुछ समझ कर वे इतना कह कर छोड़ दिए गए कि अब इन नूतन सिद्धांतों का प्रचार मत करो।

सन् १६२२ में गैलिलियो ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें कापर्निकस के सिद्धांतों का सप्रमाण वर्णन था। पहले तो किसी ने कुछ न कहा पर थोड़े ही काल में उस समय के पोप अष्टम अर्बन (Urban VIII) के हृदय में धर्म्म का प्रेम उमड़ आया। पुस्तक की जितनी प्रतियाँ मिलीं सब ज़ब्त कर ली गईं और गैलिलियो को इन्‌किज़िशन के सामने हाज़िर होने का निर्देश किया गया। खेद की बात तो यह थी कि यही पोप इस पदवी पर आरूढ़ होने के पहले गैलिलियो के मित्र और अनुयायी थे।

सन् १६३३ में गैलिलियो को रोम आना पड़ा। इन्‌किज़िशन ने इनको अपराधी ठहराया। दो ही बातें थीं। या तो अपना अपराध स्वीकार कर लें और यह कह दें कि कापर्निकस का कथन झूठा है या ब्रूनो की भाँति मरना स्वीकार करें।

वृद्ध गैलिलियो (ये, उस समय ६९ वर्ष के थे) ने मृत्यु स्वीकार करने का साहस न किया। २४ जून सन् १६३३ को उन्होंने पोप के सामने घुटने टेक कर यह शपथ

खाई कि "मैं भविष्य में इस झूठे कथन को घृणा के साथ देखूँगा कि सूर्य बीच में है और पृथ्वी घूमती है"। फिर भी उनसे न रहा गया। शपथ खा कर उठते ही उन्होंने पास के एक मनुष्य से चुपके से कहा "यह सब हुआ, पर पृथ्वी घूमती तो है"।

इसमें संदेह नहीं कि इस अवसर पर गैलिलियो ने नैतिक साहस की न्यूनता दिखलाई पर कदाचित् ही कोई ऐसा क्रूर-हृदय होगा जो इस वृद्ध ज्योतिषी की अवस्था की ओर ध्यान देता हुआ उसको दया और उसके सतानेवालों को घृणा की दृष्टि से न देखे।

फिर भी इन धर्म्मात्माओं की तुष्टि न हुई, पहले तो उनको रोम में बंदी बना कर रक्खा गया और फिर घर जाने दे कर भी यह कड़ा नियम किया गया कि वे अब सब से अलग रहें। इसी समय इनको एक महान् आधिदैविक दुःख सहना पड़ा। सन् १६३७ में ये पूर्णतया अंधे हो गए, जैसा कि इन्हों ने स्वयं एक मित्र को लिखा "यह जगत् जिसकी सीमा मैंने पहले से सहस्रगुणा बढ़ा दी मेरे लिये मेरे शरीर तक संकीर्ण हो गया, ईश्वर की यही इच्छा है। मुझे भी इसमें प्रसन्न होना चाहिए।" सन् १६४२ में ७७ वर्ष के हो कर अंधे होने के चार वर्ष पश्चात् इनकी मृत्यु हुई। पोप ने इनके गाड़े जाने के स्थान पर कोई स्मारक भी न बनवाने दिया। धिक्कार है ऐसी धार्म्मिकता पर!

इन्हीं दिनों जर्मनी में एक बड़े ज्योतिषी रहते थे। इनका नाम केप्लर (Kepler) था। इन्होंने ज्योतिष के गणित विभाग की बड़ी उन्नति की। ये सन् १५७१ में पैदा हुए थे

और आरंभ से ही निर्धनता और कष्टों ने इनसे साथ जोड़ लिया था। जब ये प्राट्ज में गणित के अध्यापक नियुक्त हुए तो थोड़े ही दिनों में प्राटेस्टेंट होने के कारण निकाल लिए गए। जब टाइखो ने प्रेग में निवास किया तो ये जाकर उनके सहायक के पद पर नियक्त हुए पर ये एक बात में टाइखो से सहमत न थे वे कापार्निकस के सिद्धांत के विरोधी थे और ये उसके माननेवाले थे।

टाइखो की मृत्यु के पीछे उनका पद इनको मिला पर बिचारे को वेतन कभी भी न मिला। सदैव इनको बादशाह से उसके लिये लड़ते ही बीता। खाने तक का कष्ट था उस पर आपत्ति यह थी कि बादशाह इनको कहीं अन्य जगह नौकरी के लिये जाने भी न देते थे। रुपए पैसे का कष्ट तो था ही इन की स्त्री और पुत्र की मृत्यु ने इनके दुःखो की मात्रा और भी बढ़ा दी। फिर भी इन्होंने इस बीच में कई महत्त्वपूर्ण विधृत्तियाँ कीं। उनमें से एक प्रधान विधृत्ति यह थी कि ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते समय गोल वृत्त नहीं प्रत्युत् अंडाकार दीर्घवृत्त बनाते हैं।

इन सब दुःखों में भी केप्लर असाधारण धैर्य और शील का परिचय देते थे। इनको झूठे नाम की लेशमात्र भी इच्छा न थी। इन्हों ने कहा था कि गुरु और मंगल के बीच में कोई पिंड है। यह उनकी भूल थी पर जब गैलिलियो ने गुरु का एक उपग्रह ढूँढ निकाला तो इनकी बात का समर्थन हो गया। इन्होंने तत्काल ही लिखा कि मेरा इस पिंड से तात्पर्य न था, मुझे इस पिंड का पता भी न था।

रुडाल्फ की मृत्यु पर उनके उत्तराधिकारी ने इनको प्रेग छोड़ने की आज्ञा दे दी और इनको लिंज़ में अध्यापक का पद मिला पर वहाँ से भी प्रोटेस्टेंट होने के कारण ये निकाले गए। इस बीच में इन्होंने और भी कई पुस्तकें लिखीं और विवृत्तियां कीं। इन्होंने ही ग्रहों की गति के विषय में तीन प्रधान विषयों का पता लगाया जिनके आधार पर आगे चल कर न्यूटन ने आकर्षण का सिद्धांत निकाला।

जब केप्लर ५७ वर्ष के हुए तो इनको एक अच्छा पद मिला पर ये उससे लाभ न उठा सके। ये रुग्ण हो गए और सन् १६३० में इनका देहांत हो गया।

इनकी मृत्यु के एक वर्ष पहले हालैंड में हाइगेंस का जन्म हुआ। इन्होंने भौतिक-विज्ञान में भी बड़ा नाम पाया है। प्रकाश का तरंगसिद्धांत (भौतिक-विज्ञान देखिए) इन्हीं का निकाला हुआ है। इन्हींने सब से पहली पेंडुलम से चलनेवाली घड़ी बनाई। इन्होंने दूरदर्शक यंत्रों की बनावट में बड़ी उन्नति की और शनि के वलय (या वलयों) का ठीक ठीक अर्थ सोच कर निकाला। सन् १६९५ में इनका देहांत हुआ।

इन्हीं दिनों इंगलैंड में एक ऐसे पुरुष वर्त्तमान थे जिनको यदि आधुनिक ज्योतिष का जन्मदाता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। ये प्रसिद्ध गणितज्ञ आइज़क न्यूटन (Issac Newton) थे। ये एक साधारण जमींदार के लड़के थे और १६४२ में इनका जन्म हुआ था। इनके घर के लोग इन्हें खेती के काम में लगाना चाहते थे पर इनको उस ओर तनिक

भी अभिरुचि न थी। और खेती का काम छोड़ कर चुपके चुपके ं गणित की पुस्तकें पढ़ा करते। जब लोगों ने देख लिया कि ये ाढ़ने लिखने के सिवा और कोई काम न करेंगे तो इनको केंब्रिज विश्वविद्यालय में भेज दिया गया। वहीं २७ वर्ष की नवस्था में ये गणित के अध्यापक भी हो गए।

ज्योतिष के अतिरिक्त इन्होंने भौतिक-विज्ञान में भी कई ासिद्ध विवृत्तियाँ कीं। इन्होंने गैलिलियो से भिन्न रीति का रक दूरदर्शक यंत्र बनाया। उस प्रकार के यंत्रों को अब भी यूटन का दूरदर्शक (Newtonian telescope) कहते हैं। यूटन ने ही पहले पहल यह दिखलाया कि श्वेत प्रकाश वस्तुतः ात रंगों के प्रकाशों के मिश्रण से बना हुआ है। (भौतिक-वेज्ञान देखिए)।

परंतु उनकी सब से बड़ी विवृत्ति वह है जिसको आकर्षण नेयम कहते हैं। ऐसी लोकोक्ति है कि अपने उद्यान में एक ेब को पेड़ से गिरते देख कर न्यूटन का ध्यान उस ओर ाया। जो कुछ हो, इन्होंने १६६६ में इस गूढ़ विषय पर विचार करना आरंभ किया और अंत में यह निश्चय किया कि ाकर्षण की शक्ति प्रत्येक ग्रह, उपग्रह एवं पिंड मात्र को ारिचालित करती है। न्यूटन को उन नियमों से बड़ी सहा-ाता मिली जो केप्लर ने ग्रहों की गति के विषय में निकाले ा। उन्होंने बड़ी सरलता से दिखला दिया कि ये तीनों नियम ाकर्षण सिद्धांत के अनुकूल हैं।

परंतु न्यूटन का मार्ग निष्कंटक न था। कई प्रसिद्ध ज्ञानिक इस मत के विरोधी थे; धर्मशिक्षकों ने इसको

धर्म्म के विरुद्ध बतलाया पर न्यूटन के पास इतना रुपया न था कि वे अपनी विवृत्तियों को पुस्तक रूप से छपा सकते।

इस अवसर पर इनके मित्र हाली ने, जिनके केतु का कथन पहले हो चुका है, इनकी बड़ी सहायता की। उन्होंने अपने व्यय से इनकी पुस्तक प्रिंसीपिआ (Principia) छपवाई।

पुस्तक १६८७ में छपी। उसी साल इनका बादशाह से, जो विश्वविद्यालय के प्रबंध में हस्तक्षेप करना चाहता था, झगड़ा हो गया। न्यूटन और आठ अन्य अध्यापकों ने उसका विरोध किया और अंत में इन लोगों की ही जीत हुई।

सन् १६९७ में ये टकसाल के अधिष्ठाता नियुक्त हुए। उस समय से इनके दिन सुख से ही बीते। राष्ट्र की ओर से इनका बहुत कुछ सम्मान हुआ और इन्हें नाइट की उपाधि मिली।

ये बड़े धार्मिक व्यक्ति थे और इनका स्वभाव बड़ा ही शांत था। बहुत लोगों ने इनकी और इनके कुत्ते की कहानी सुनी होगी। एक बार इनके प्यारे कुत्ते डायमंड ने टेबुल पर लंप उलट दिया जिससे इनके कई बहुमूल्य कागज, जो इन्हों ने वर्षों के परिश्रम से प्रस्तुत किए थे, जल गए। इन्होंने क्रोध करने के स्थान में केवल इतना ही कहा "डायमंड, तू नहीं जानता कि तूने कितनी हानि की है।" ये अपने समय को इतने श्रम में बिताते थे कि इनका स्वास्थ्य थोड़ी ही अवस्था में बिगड़ गया। फिर भी ये चौरासी वर्ष की आयु तक पहुँचे। सन् १७२७ में इनका देहांत हुआ।

न्यूटन में अभिमान का नाम भी न था। वे अपने को सदैव अपने पहले के वैज्ञानिकों का ऋणी मानते थे। उन्होंने स्वयं कहा है "यदि मैं और लोगों से अधिक देख सका तो इसका कारण यह है कि मुझे देवों के कंधे पर खड़े होने का अवसर मिला।" न्यूटन के काल में ही दो और नामी व्यक्ति थे। इनमें से फ्लाम्स्टीट (Flamsteed) ने तारों एक की सूची बनाई थी। ये इंग्लैंड के प्रथम राज-ज्योतिषी थे। दूसरे हाली का नाम, पहले की कई बार आ चुका है। ये इंग्लैंड के द्वितीय राज-ज्योतिषी हुए। इनके पिता धनिक थे और उन्होंने कभी इनके कामों में बाधा डालने का प्रयत्न नहीं किया। इन्होंने उन तारों की एक सूची बनाई जो भूमध्यरेखा के उत्तर की ओर से नहीं देख पड़ते। इन्हों ने न्यूटन की प्रिंसीपिआ छपवाई और केतु विषयक गणना की थी। चौंसठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने चंद्रमा का अवलोकन करना आरंभ किया और अट्ठारह वर्ष तक उस काम में लगे रह कर उसे समाप्त किया। पचासी वर्ष की अवस्था में सन् १७४२ में न्यूटन के पंद्रह वर्ष पीछे इन्होंने शरीर छोड़ा।

न्यूटन के जीवनकाल में ही एक और ज्योतिषी ने प्रसिद्धि पाई थी। इनका नाम जेम्स ब्रैडले था। छोटी अवस्था में इनको अपने चचा के साथ, जिनको ज्योतिष में अभिरुचि थी, रहने का अवसर मिला। उन्हीं के साथ रह कर इन्होंने पहले पहल इस विद्या की शिक्षा पाई। पहले ये एक गिर्जा के अधिष्ठाता नियत हुए पर थोड़े ही दिनों में इस पद को छोड़ कर आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में ये ज्योतिष के अध्यापक

नियत हुए। वहाँ पर रह कर इन्होंने कई प्रशंसनीय कार्य्य किए। अच्छे यंत्रों के अभाव में भी इन्होंने शुक्र का घनफल नापा। इनकी दो विवृत्तियाँ प्रधान हैं। एक तो यह कि पृथ्वी का अक्ष सदैव एक ही दिशा में नहीं रहता प्रत्युत् जैसा कि द्वितीय अध्याय में बतलाया गया है, धीरे धीरे घूमता है और २५००० वर्ष में एक वृत्त पूरा करता है। दूसरी, यह कि पृथ्वी के घूमने के कारण प्रकाश को किसी नियत तारे से चल कर पृथ्वी पर किसी नियत स्थान तक पहुँचने में भिन्न भिन्न समय लगता है। इस काल-व्यतिक्रम को दिखला कर ब्रैडले ने कापर्निकस के कथन की और भी पुष्टि कर दी।

हाली की मृत्यु पर इनको राज-ज्योतिषी का पद मिला। सन् १७६२ में ६९ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई।

जेम्स फर्ग्युसन की जीवनी, जिस का मैं अब कथन करनेवाला हूँ, ध्यान देने योग्य है। ये एक खेत में काम करनेवाले एक निर्धन मजदूर के घर मे १७१० में पैदा हुए। इन्होंने आप ही पढ़ना सीखा और इनके पिता ने इनको लिखना सिखलाया। जन्म भर में ये केवल तीन महीने के लिये स्कूल में पढ़े थे।

इनको बचपन से ही कलपुर्ज़ों का बड़ा शौक था और सात वर्ष की अवस्था में इन्होंने इस विषय पर एक लेख लिखा। जब ये चौदह वर्ष के हुए तो पास के एक खेत में काम करने के लिये भेजे गए। दिन भर ये काम करते और रात के समय ये खेत में अकेले चले जाते। वहाँ जा कर अपना कंबल बिछा कर लेट जाते और तारों का अवलोकन

करते। अवलोकन का यंत्र भी विलक्षण था। एक डोरे पर माला की भाँति कई दाने पहनाए हुए थे। ये उस तागे पर दानों को इस प्रकार हटाते जाते थे कि एक एक दाना एक एक तारे को ढाँक लेता था और फिर मोमबत्ती के प्रकाश मे इन दानों को इसी प्रकार कागज पर रख कर उनके स्थानों में विंदु बना देते। इस रीति से एक प्रकार का तारों का नक्शा बन जाता था जिसमें प्रत्येक तारा अन्य तारों से उतनी ही दूरी पर होता था जितनी दूरी पर वह आँख से प्रतीत होता है।

इस बात का पता इनके स्वामी को लग गया। वह समझदार और सज्जन मनुष्य था। उसने इनकी सहायता करनी आरंभ की और इनका पड़ोस के और कई सज्जनों से परिचय कराया। ग्रांट नामक एक महाशय के एक भृत्य ने इन को गणित पढ़ाई। इसी प्रकार इनकी क्रमशः कई बड़े आदमियों से जान पहचान हो गई।

सन् १७४३ में ये लंडन आए। वहाँ इनको कोई ठिकाने का व्यवसाय न मिला। ज्योतिष पर व्याख्यान देना और चित्रकारी—ये ही दोनों इनके काम थे, फिर भी वर्षों तक इन का समय बड़े कष्ट से बीता।

फर्ग्युसन दो तीन बातों के लिये प्रसिद्ध हैं। जितना इनके द्वारा ज्योतिष का प्रचार बढ़ा उतना उस समय तक और कोई ज्योतिषी न कर सका था। ये इस विषय के बड़े ही सर्वप्रिय वक्ता थे और इनके व्याख्यान अत्यंत सुबोध और शिक्षाप्रद होते थे। ज्योतिष संबंधी यंत्रों के निर्माण मे भी

ये अद्वितीय थे । जिस प्रकार ग्रहों, उपग्रहों आदि की गतियों को यंत्रों के द्वारा इन्होंने दिखलाया है वैसा और किसी ने नहीं किया है।

१७५६ में इन्होंने ज्योतिष पर एक बड़ी पुस्तक लिखी। उसमें इन्होंने ज्योतिष की सभी ज्ञातव्य बातों को न्यूटन के सिद्धांतों के आधार पर समझाया। यद्यपि न्यूटन के कथनों का सर्वत्र ही आदर था पर उस समय तक भी उन्होंने ज्योतिष में अपना समुचित स्थान प्राप्त नहीं किया था। फ़र्गुसन ने उनको ज्योतिष का मूल ही बना दिया।

सन् १७६०.में इनकी आर्थिक दशा कुछ सुधरी। इंग्लैंड के बादशाह तृतीय जार्ज ने इनके लिये ५० पौंड प्रति वर्ष की पेंशन नियत कर दी। यह पेंशन जो आज कल के भाव से ७५०) के बराबर हुई ऐसे योग्य मनुष्य के लिये बहुत ही कम थी पर उस समय फ़र्गुसन की इस से बड़ी सहायता हो गई क्योंकि उन दिनों ये बड़े ही कष्ट में थे।

इसके बाद लगभग पंद्रह वर्ष तक ये इसी प्रकार के उपयोगी काम करते रहे। सन् १७७६ में ६६ वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हुआ।

इनके जीवन से हम को कई उपयोगी शिक्षाएँ मिल सकती हैं। एक निर्धन मज़दूर के घर जन्म ले कर इतना नाम प्राप्त करना, इतनी विद्या उपार्जित करना और इतने उपयोगी काम करना साधारण बात नहीं है। यदि लड़कपन में इनको अच्छी शिक्षा-सामग्री मिली होती तो इन्होंने न जाने और कितना काम किया होता !

अभी तक हम जिन ज्योतिषियों के नाम लिख चुके हैं वे सभी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे परंतु उन में से कोई भी इस सौरचक्र के बाहर नहीं गया। उन्होंने इस चक्र के भीतर के पिंडों के अवलोकन में अपना समय बिताया। पर अब हम जिन महापुरुष के जीवन का कथन करेंगे वे इस छोटे जगत् की सीमा को उल्लंघन करके इतनी दूर बाहर पहुँचे कि उनको ज्योतिर्षिंद्र कहना अक्षरशः सत्य होगा।

विलियम हर्शल का जन्म जर्मनी के हैनोवर नगर में सन् १७३८ में हुआ। इनके पिता पल्टन में बैंड-मास्टर (बाजा बजानेवालों के शिक्षक) थे। हर्शल ने थोड़े दिनों तक स्कूल में शिक्षा पाई। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और ये गाने बजाने में (विशेषतः बजाने में) बड़े निपुण थे। इसीलिये ये भी पल्टन के बैंड में नौकर हो गए।

इनके नौकर होने के थोड़े ही दिनों पीछे सप्तवर्षीय युद्ध (Seven Years' War) नाम की लडाई छिड़ गई और इनको भी लड़ना पड़ा, पर इनकी इस ओर तनिक भी अभिरुचि न थी। इसलिये ये सेना को छोड़ कर १७५७ में इंग्लैंड भाग आए।

कुछ दिनों तक इधर उधर फिरने के पीछे इनको १७६७ में बाथ नगर के प्रसिद्ध गिर्जा में आर्गन बजाने का काम मिला, जिससे इनकी जीविका का काम चल निकला। उसी साल इनके पिता की मृत्यु हुई। हर्शल अपनी छोटी बहन कैरोलीन को बहुत चाहते थे और वह भी इनसे बड़ा स्नेह करती थी। हर्शल उसे भी १७७२ में इंग्लैंड ले आए।

इन्हीं दिनों हर्शेल को ज्योतिष का चस्का लगा। उन्होंने फ़र्गुसन की पुस्तकें पढ़ डालीं, जिससे इच्छा और भी तीव्र हुई। कुछ दिनों तक तो एक भाड़े के यंत्र से काम चला, पर हर्शेल अपना निज का यंत्र चाहते थे। इतना धन उनके पास नहीं था कि यंत्र मोल ले सकें, अतः उन्होंने स्वयं एक यंत्र बनाने का विचार किया। जब उनको बाजा बजाने से छुट्टी मिलती तो वे इस काम में लगते। यह यंत्र न्यूटन के यंत्र के सदृश था। इसके दर्पण (जो कि धातु के थे) को ठीक करने में कभी कभी लगातार सोलह सोलह घंटे तक काम करना पड़ता था। उस समय कैरोलीन से इनको अमूल्य सहायता मिलती थी। वह इनको अपने हाथ से खाना खिला दिया करती और समय काटने के लिये कहानियाँ सुनाया करती। उनको स्वयं एक अच्छी नौकरी मिल रही थी पर उन्होंने उसको स्वीकार न किया।

१७७४ में जब कि इनकी अवस्था पैंतीस वर्ष की हो गई थी इन्होंने अपने यंत्र से तारों को देखना आरंभ किया। ग्रहों की ओर इनका ध्यान भी न था। ये उन पिंडों को, जिनको और लोग सहस्रों वर्षों से देखते आए थे, अवलोकन करना नहीं चाहते थे। इनकी इच्छा अस्पष्ट क्षेत्र में काम करने की थी।

कई वर्षों तक ये बजाने और ज्योतिष का दोनों काम करते रहे। इस बीच में इन्होंने कई उत्तमोत्तम तीव्र यंत्र बनाए। इनकी पहली विवृत्ति १७८१ में हुई। उसका कथन पहले आ चुका है।--जब किसी को स्वप्न में

भी किसी नवीन ग्रह के अस्तित्व की भी संभावना प्रतीत न होती थी इन्होंने मिथुन राशि को अवलोकन करते हुए युरेनस को ढूँढ़ निकाला।

इस विवृत्ति ने इनकी सारी अवस्था पलट दी। पृथ्वी के बड़े ज्योतिषियों में इनको तत्काल ही स्थान मिला। इनको राजकीय ज्योतिषी का पद मिला और २०० पौंड साल का वेतन भी मिलने लगा। इन्होंने सेना से भागने में जो अपराध किया था वह भी क्षमा कर दिया गया। १७८७ में इनकी बहिन कैरोलीन इनकी सहायक नियत हुई और उसको भी ५० पौंड साल का वेतन मिलने लगा।

१७८६ मे हर्शल ने एक नया घर लिया और जन्म भर वे यहीं रहे। इस घर का कथन करते हुए एक ज्योतिषी कहते हैं—" जितनी विवृत्तियाँ इस घर में हुई हैं उतनी और किसी भी घर में नहीं हुई हैं "। थकना तो वे जानते ही न थे। संध्या से सबेरे तक आकाश का अवलोकन करते रहते थे। पास में बैठी हुई इनकी बहिन जो कुछ ये कहते थे लिखती जाती थी। इंग्लैंड की सर्दी का क्या कहना है। दवात में स्याही जम जाती थी, पर इनको सर्दी का भय न था। जब तक तारे चमकते जाँय इनको किसी बात की भी चिंता न थी। इन्होंने अपनी बहिन को भी एक यंत्र दे दिया था जिसके द्वारा उसने भी कई नभस्तूपों और केतुओं की विवृत्ति की।

इनका स्वभाव बड़ा सरल और गर्वशून्य था। इनका ध्यान आकाश में ऐसा लगा हुआ था कि संसारी बातें इनको मानों स्पर्श ही न करती थीं।

धीरे धीरे इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इनका मस्तिष्क वैसा ही प्रवुद्ध था, पर शरीर में परिश्रम सहन करने की शक्ति न रही। एक तो इनका काम यों ही कठिन था, दूसरे राजकीय ज्योतिषी का पद क्या था, एक आपत्ति थी। जब ही बादशाह आदि का जी चाहता चले आते और इनको घंटों उन लोगों को आकाश का तमाशा दिखलाना पड़ता। अंत में बहुत दिनों तक रुग्ण रह कर ८३ वर्ष की अवस्था में १८२२ में इनका देहांत हुआ। इनके २५ वर्ष बाद इनकी बहन ने ९३ वर्ष की अवस्था में १८४८ में शरीर छोड़ा।

हमने ऊपर हर्शल की एक विवृत्ति का कथन किया है। वह हर्शल के लिये आकस्मिक थी, क्योंकि वे ग्रहों के नहीं, प्रत्युत् तारों के ज्योतिषी थे। वस्तुतः जितनी विवृत्तियाँ उन्होंने की हैं उतनी किसी एक व्यक्ति ने नहीं कीं। उन्होंने लगभग दो सहस्र नभस्तूप और सात करोड़ तारों को ढूँढ निकाला, जैसा कि उनकी समाधि के पत्थर पर लिखा है "He broke through the barriers of the skies" "वे आकाश के प्राकार को तोड़ कर भीतर घुस गए।" उस अनुपम पुरुष की, जिसने सौरचक्र के ही नहीं किंतु दृश्य विश्व के विस्तार को इस अश्रुतपूर्व सीमा तक खींच कर पहुँचा दिया, जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस पर भी उनकी नम्रता को देखिए। एक पत्र में उन्होंने अपनी बहिन को लिखा था "लोग मेरी विवृत्तियों को बड़ी कहते हैं। यह कैसी भारी भूल है। लोग ज्ञान में कितने पीछे हैं।"

इनके पीछे कोई दूसरा ज्योतिषी ऐसा न हुआ जो इनकी समता को पहुँच सके। सच तो यह है कि न्यूटन तथा हर्शल और सब ज्योतिषियों से अलग एक भिन्न और सर्वोच्च कोटि में हैं। कदाचित् कापर्निकस भी इसी श्रेणी में रखने के योग्य हों पर अब इनके साथ उसी ज्योतिषी का नाम लिया जायगा जो भविष्यत् तारों की गति के नियमों की निर्विवाद और व्यापक व्याख्या करेगा।

परंतु इस कथन का यह तात्पर्य्य नहीं है कि तब से कोई बड़ा ज्योतिषी हुआ ही नहीं। ज्योतिष के श्रेष्ठ आचार्यों में लैप्लास (Laplace), ओल्बर्स (Olbers), बेसेल (Bessel), स्त्रुव पिता और पुत्र (Struve father and son), हेंडर्सन (Henderson), लेवेरियर (Leverrier), ऐडम्स (Adams), सेची (Secchi), हगिंस (Huggins), वोजेल (Vogel), शियापैरेलि (Schiaparelli), न्यूकोंब (Newcomb), जान हर्शल (John Hershel) लावेल (Lowell), मांडर्स (Maunders), कैंपबेल (Campbell), हेल (Hale), वूल्फ (Wolf), पिकरिंग (Pikering) के नाम आदरणीय हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई महाशय हो गए हैं और हैं जिनके द्वारा हमारे ज्ञान की वृद्धि हुई है। अब भी ऐसा कोई साल नहीं जाता जिसमें कोई नई बात न जानी जाती हो। यद्यपि अब उतनी महान या बहुसंख्यक विवृत्तियाँ नहीं होतीं पर हमको स्मरण रखना चाहिए कि संसार में केवल बड़े लोगों के द्वारा ही सब काम नहीं होते, छोटों की भी आवश्यकता है। केवल

सेनापतियों से काम नहीं चलता, सैनिक भी चाहिएँ।

ऊपर जो संक्षिप्त वृत्तांत दिया गया है उसके पढ़ने से चित्त में कई विचार उत्पन्न होते हैं। हमको इस बात का पता लगता है कि यदि मनुष्य अपने धैर्य्य, बुद्धिवल और उत्साह से काम ले तो वह कैसे कैसे कार्य्य कर सकता है। उसको कभी कभी अनेक कष्ट भुगतने पड़ते हैं, सत्य के लिये कई वीर ज्योतिषियों को क्या क्या कष्ट नहीं सहने पड़े, यहाँ तक कि ब्रूनो को जीवित जलना पड़ा—पर अंत में उसकी जीत ही होती है और ससार मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा और उसके सतानेवालों की निंदा करता है। इन ज्योतिषियों में कई आजन्म निर्धन रहे, कितनों को केवल नाम मात्र की शिक्षा मिली थी। परंतु वे अपना नाम अमर कर गए और अपने जीवनों को दूसरों के लिये आदर्श बना गए।

दूसरी बात विचार करने की यह है कि किस अद्भुत प्रकार से परंपरा चली आई है। ज्यों ही एक ज्योतिषी क्षेत्र से हटता है, दूसरा उसके स्थान में आ खड़ा होता है। बीच में ऐसा लंबा अवकाश पड़ता ही नहीं जिसमें उन्नति का काम बंद हो जाय। जब ईश्वर की कृपा किसी समाज पर होती है तो उसमें इसी प्रकार विद्वानो की परंपरा बन जाती है, सभ्यता का क्रम बिना किसी रुकावट के बढ़ता जाता है और वह समाज शिक्षा में उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।

१९–दिग्विजेता (भारतीय)।

इस अध्याय के आरंभ में ही मुझे खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि इस के लिये मुझे उपयुक्त सामग्री पर्य्याप्त परिमाण में न मिल सकी। बहुत से विषय, जैसे ज्योतिषियों के ब्याल, विवादास्पद प्रश्न हैं इसीलिये यह अध्याय अत्यंत संक्षिप्त रूप से लिखा गया है।

भारत में ज्योतिष की उन्नति का होना स्वाभाविक था। हमारे यहां यह धर्म के अंतर्गत है। वेद के छः अंगों में से यह भी है, इसीलिये प्राचीन काल से ही इस देश में इस विद्या का महत्त्व सर्व-मान्य रहा है, हिंदुओं के जीवन से इसका बड़ा घनिष्ठ संबंध है। हमारे सभी तेहवार, उत्सव, पर्व आदि ज्योतिषियों की ही कृपा से ठीक ठीक माने जा सकते हैं। किसी अन्य जाति के यहाँ इतने उत्सव होते भी नहीं। यदि ज्योतिष की ओर पर्य्याप्त ध्यान न दिया जाय तो ये सभी व्यतिक्रांत हो जाँय।

परंतु वैदिक काल के किसी ज्योतिषी का नाम नहीं कहा जा सकता। ऋषि लोग अन्य बातों के साथ साथ ज्योतिष के भी ज्ञाता थे। वेदों में स्थान स्थान पर ऐसे मंत्र मिलते हैं जिनमें ज्योतिष संबंधी बातें कही गई हैं। बहुत लोग जानते होंगे कि इसी प्रकार के कुछ मंत्रों के आधार पर तिलक महोदय ने वेदों की प्राचीनता और आर्य्यों के आदि में उत्तरीय ध्रुव के समीप निवासी होने को प्रमाणित किया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे सब से प्राचीन ज्योतिषी आर्य्य भट्ट थे। ये पाटलिपुत्र (पटना) के रहनेवाले थे और विक्रमीय संवत् ५३३ (सन् ४७६) में पैदा हुए थे। २३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने ज्योतिष में अच्छा नाम प्राप्त कर लिया था। जहाँ तक पता लगता है पहले पहल इन्होंने ही यह निश्चित किया था कि पृथ्वी के अक्षभ्रमण से दिनरात का दृग्विषय होता है। यूनानी लोग इनको ऐंडुबेरिअस और अरबवाले अर्जबह कहते थे। इतने दूर देशों म इनकी प्रसिद्धि का होना ही इनके महत्त्व का सूचक है।

इनके कुछ ही काल पीछे, संवत् ५६२ (सन् ५०५) के लगभग प्रसिद्ध ज्योतिषी वाराहमिहिर ने ज्योतिष की बड़ी उन्नति की। कहा जाता है कि वाराहमिहिर विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक रत्न थे। यदि यह बात सत्य है तो ये विक्रमादित्य कौन थे, ये वस्तुतः संवत् ५६२ में वर्त्तमान थे या नहीं, ये बड़े पेचीले प्रश्न हैं।

वाराहमिहिर के लगभग सवा सौ वर्ष पीछे अनुमानतः संवत् ६८५ (सन् ६२८) मे ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धांत का निर्म्माण किया। ये बीजगणित के बड़े प्रबल आचार्य्य थे। इन्हीं से सीख कर अरबवालों ने इस विद्या का प्रचार पाश्चात्य देशों में किया। ये मध्य भारत में किसी स्थान के रहनेवाले थे।

भारत के ज्योतिषियों में सब से अधिक नाम भास्कर का है। इनका ग्रथ, 'सिद्धांतशिरोमणि' इस समय तक हमारे ज्योतिषियों का एक मात्र आधार है। ये सह्याद्रि पहाड़ के पास आधुनिक बंबई प्रांत के किसी प्रदेश विशेष

के रहनेवाले थे और संवत् ११७१ (सन् १११४) में इनका जन्म हुआ था। इसमें संदेह नहीं कि वह ग्रंथ इनकी असाधारण प्रतिभा का एक वृहत स्मारक है। इन्होंने गणित में भी कई स्मरणीय विवृत्तियाँ की थीं।

इनके पीछे सैकड़ों वर्षों के लिये भारत को ज्योतिष ने छोड़ दिया। ज्योतिषियों ने आकाशावलोकन का परित्याग कर के पुस्तकों का पल्ला पकड़ लिया। इसका फल यह हुआ कि धीरे धीरे इनकी ज्योतिष में बड़ी बड़ी भूलों ने घर कर लिया। मान लीजिए कि भास्कर ने चंद्र की गति नापने में १ सेकंड की भूल कर दी। अब यदि बराबर आकाशावलोकन होता रहता तो कोई न कोई इस भूल को पकड़ लेता। परंतु जब किसी ने ऐसा किया ही नहीं तो इस समय जब कि उनको ८०० वर्ष हो गए हैं यह भूल ८०० सेकंड अर्थात् लगभग १३$\frac{1}{3}$ मिनट के बराबर हो गई। इसका फल यह होगा कि ज्योतिषियों की सभी चंद्र संबंधी *गणनाओं*, जैसे चंद्रग्रहण में, १३$\frac{1}{3}$ मिनट की भूल पड़ेगी। अशिक्षित लोगों को इस बात का पता न चले पर सच्चे ज्योतिषी इस बात को तत्काल जान जायँगे।

बात यह थी कि इन दिनों मुसलमानों का राज्य था, हिंदू धर्म्म, समाज, संपत्ति, विद्या सब के लिये ही यह आपत्ति का काल था। इसी से विद्या की उन्नति का होना बंद हो गया। ज्योतिषी गण केवल पुस्तकों को रट कर पंडित हो गए थे।

पाँच सौ वर्ष तक यही अवस्था रही। लगभग सन् १७०० के आमेराधिपति महाराज जय सिंह का ध्यान इस ओर गया। उन्होंने देखा कि पंचागों के कथनों और तारा ग्रहादि के

वास्तविक स्थानों में बड़ा अंतर पड़ता है। इस त्रुटि को दूर करने के लिये उन्होंने काशी, जयपूर, दिल्ली में वृहत्काय वेधालय बनवाए जिनमें पत्थर की ऊँची और स्थूल दीवारों के रूप के बड़े बड़े यंत्र थे। कुछ दिनों तक इनमें बहुत उपयोगी काम हुए। स्वयं जयसिंह ने उस समय युरोप की प्रचलित तारा-सूचियों में कई भूलें निकालीं। परंतु अब ये केवल देखने के लिये तमाशे रह गए हैं। इनसे कुछ भी लाभ नहीं उठाया जाता है। लोग यंत्रों के ठीक ठीक नामों तक को स्यात् ही जानते हैं, उनसे काम लेना तो दूर रहा। कम से कम काशी के प्रसिद्ध 'मानमंदिर वेधालय' की तो यही दशा है, यद्यपि उसमें बापू देव शास्त्री जी के प्रयत्न से, यंत्रों के ऊपर नाम के पत्थर लगा दिए गए हैं। दिल्ली के वेधालय का नाम 'यंत्र मंदिर' आज कल बहुत लोगों के लिये 'जंतर मंदर' या 'जंतर मंतर' में अपभ्रष्ट हो गया है !

इनके पीछे फिर ज्योतिष का काम बंद हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि अब इस देश में नूतन विवृत्तियाँ होंगी ही नहीं। विशेषतः इस समय जब कि अंग्रेजी राज्य के प्रभाव से पाश्चात्य विद्या का घर घर प्रचार हो रहा है यह कौन आशा कर सकता था कि भारत में अँग्रेजी विद्या से अनभिज्ञ होते हुए कोई व्यक्ति कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार कर सकेगा। परंतु इन विचारों को झूठा प्रमाणित करने के लिये ही जिन महाशय का अब हम कथन करेंगे उन्हों ने मानों जन्म लिया था।

चंद्रशेखर सिंह सामंत का जन्म उड़ीसा के अंतर्गत कटक से २५ कोस खंडापारा राज्य में संवत् १८९२ (सन् १८३५) में

हुआ। ये वहां के क्षत्रिय राजवंश में से ही थे। इनका पूरा नाम चंद्रशेखर सिंह सामंत हरिचंदन महापात्र था। अंत की दोनों उपाधियां पुरी के राजा की दी हुई थीं जिनका उस प्रांत में धार्मिक दृष्टि से बड़ा प्रभाव है। साधारणत. इनको लोग पठानी सांत कहा करते थे। (इनके पिता की कई संतान मर गई थीं इसलिये इन्हें पठान कह कर पुकारते थे कि इस बुरे नाम से बालक बच जाय। सांत शब्द सामंत का अपभ्रंश था) इनको पहले संस्कृत की शिक्षा दी गई और इन्हों ने व्याकरण, स्मृति, पुराण, न्याय और काव्य के प्राय: सभी प्रधान ग्रंथ पढ़ डाले। काव्यरचना की योग्यता भी इन्हों ने उपार्जित कर ली। दस वर्ष की अवस्था में इनके एक चचा ने इनको कुछ फलित ज्योतिष पढ़ाई और इस विद्या का बहुत कुछ ज्ञान इन्हों ने स्वयं ग्रंथों को पढ़ पढ़ कर प्राप्त कर लिया।

पंद्रह वर्ष की अवस्था में इनको ज्योतिष में 'स्वयं' गणना करने की योग्यता हो गई। परंतु आपत्ति यह थी कि आकाश के सभी पिंडों का व्यवहार गणना के प्रतिकूल निकलता था। जिस ग्रह या नक्षत्र को गणना के अनुसार जिस समय जिस स्थान पर होना चाहिए था वह उस से कुछ आगे या पीछे हट कर ही रहता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी अवलोकन और गणना का साम्य न हो सका।

इसलिये चंद्रशेखर ने आकाश का नियमित अवलोकन करना निश्चित किया। इस काम के लिये पहले तो यंत्रों की आवश्यकता हुई। पर न तो कहीं यंत्र थे और न कोई उनका निर्माण करना जानता था। पुरानी पुस्तकों के आधार

पर चंद्रशेखर ने दो एक यंत्र बनाए । ये यंत्र बड़े अनगढ़ और स्थूल थे परंतु अभ्यास करते करते चंद्रशेखर इनसे ही बहुत सूक्ष्म काम कर लेते थे। दूरदर्शक यंत्रों से इन्हों ने कभी काम नहीं लिया। लेते कहां से, ऐसे यंत्र उन्होंने बहुत दिनों तक देखे भी न थे। जब पहले पहल इनको अपने एक मित्र की कृपा से एक दूरदर्शक यंत्र द्वारा वृहस्पति और शनि को देखने का अवसर मिला तो इन्होंने यह खेद प्रकट किया कि मुझे छोटी अवस्था में ऐसे यंत्रों की सहायता क्यों न मिली।

इन यन्त्रों की सहायता से ही बीसों वर्ष तक ये काम करते रहे। इस काल में इन्हों ने सभी गृहादि की गतियों का निर्णय किया। नीचे की सारणी से प्रतीत होगा कि सिद्धांत शिरोमणि, अँग्रेजी गणना और इनकी गणना में कितना अंतर है।

पिंड	पाश्चात्य गणना	सिद्धांतशिरोमणि	पाश्चात्य गणना से अंतर	चंद्रशेखर	पाश्चात्य गणना से अंतर
सूर्य्य या पृथ्वी	३६५·२५६३७ दिन	३६५·२५८४३ दिन	+·००२०६	३६५·२५८७५ दिन	+·००२३८
चंद्र	२७·३२१६६ "	२७·३२११४ "	−·०००५२	२७·३२१६७ "	+·००००१
मंगल	६८६·९७९४ "	६८६·९९७९ "	+·०१८५	६८६·९८५७ "	+·००६३
बुध	८७·९६९२ "	८७·९६९९ "	+·०००७	८७·९७०१ "	+·०००९
गुरु	४३३२·५८४८ "	४३३२·२४०८ "	−·३४४०	४३३३·६२७८ "	+·०४३०
शुक्र	२२४·७००७ "	२२४·९६७९ "	−·००२८	२२४·७०२३ "	+·००१६
शनि	१०७५९·२१९७ "	१०७६५·८१५२ "	+६·५५९५५	१०७५९·७६०५ "	+·५४०८

यदि ये इतना ही काम कर जाते तो भी इनका नाम स्मरणीय होता, क्योंकि सैकड़ों वर्ष से किसी ज्योतिषी ने स्वयं आकाशावलोकन करके गतियों की गणना करने का कष्ट नहीं उठाया था। परंतु इनकी कीर्ति इतने ही पर समाप्त नहीं है। चंद्र की गति निकालने में तीन बातों का ध्यान रखना पड़ता है। इनको अँग्रेजी में 'evection,' 'variation' और 'anunal equation कहते हैं। किसी प्राचीन हिंदू ज्योतिषी ने इनका स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। इन तीनों बातों को चंद्रशेखर ने ढूँढ़ निकाला। अँग्रेजी ज्योतिष इनसे अनभिज्ञ नहीं है परंतु चंद्रशेखर के लिये ये एकमात्र नूतन विवृत्तियाँ थीं क्योंकि ये अँग्रेजी ज्योतिष से परिचित न थे। यदि इनके पास अच्छे यंत्र होते तो ये न जाने और क्या क्या विवृत्तियाँ करते।

इनका जीवन सुखमय न था। एक राजा के संबंधी होते हुए भी इनको बड़ा कष्ट था, खाने पीने तक का क्लेश था। शरीर भी बड़ा रुग्ण रहता था। कभी कभी बात करते करते पेट में इतनी पीड़ा उठती कि ये पृथ्वी पर लेट जाते थे। स्वभाव इनका इतना सरल नम्र और संसारी कामों में अकुशल था कि इनको और भी हानि पहुँचती थी। इनके प्राय: सभी संबंधी, स्वयं राजा साहब, इनके विरोधी थे। वे लोग एक राजकुलोत्पन्न व्यक्ति के लिये ज्योतिषी का काम करना अप्रतिष्ठा-जनक समझते थे। साधारण लोग भी इनके कार्य्य का महत्त्व नहीं समझते थे। वे इनसे फलित ज्योतिष के प्रश्न पूछते जिनका ये उत्तर नहीं दे सकते थे। इन्हीं कारणों

से इनकी टाइखो ब्रेही से तुलना की जाती है। कुछ अंशों में यह उपमा ठीक है पर दो बातें ध्यान देने की हैं। एक तो इनके पास टाइखों के सदृश यंत्र न थे और दूसरे जो सुभीता टाइखों को लगभग बीस वर्ष तक डेन्मार्क में मिला था वह इनको एक दिन के लिये भी न मिला।

इनके विचारों मे एक बात आज कल की दृष्टि से असंगत थी—ये इस सिद्धांत को नहीं मानते थे कि पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है प्रत्युत् इनके मत में सूर्य्य ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। यह भी इनका टाइखों के साथ एक साम्य है।

धीरे धीरे 'Knowldge' पत्र द्वारा इनका यश युरोप में भी फैला और वहां के वैज्ञानिक भी इनके नाम से परिचित हुए। भारत में गवर्मेंट ने इनको महामहोपाध्याय की उपाधि दी जो प्राय ब्राह्मणों को ही मिलती है।

यह पहले कहा जा चुका है कि ये संस्कृत में पद्यरचना कर सकते थे। पद्य में ही इन्होंने ज्योतिष की एक पुस्तक लिखी थी। इसमें इनकी सब विवृत्तियाँ दी हुई हैं। यह कहने की आश्यकता नहीं कि यह ज्योतिषियों के लिये अत्यत उपयोगी हैं। यह पुस्तक पहिले खजूर के पत्तों पर लिखी गई थी। बहुत दिनों तक तो यह छप ही न सकी। कारण यह था कि चंद्रशेखर एक तो स्वयं छपाने के बहुत इच्छुक न थे और दूसरे उनके पास पर्य्याप्त धन भी न था। अंत में उनके मित्र श्रीयुत योगेश चंद्र राय एम० ए०, विज्ञानाध्यापक कटक कालेज, के प्रयत्न से यह कटक के मुकुर यंत्रालय में सन् १८९९ में छप गई। वहीं से तीन रुपए में मिल सकती

है। इसका नाम 'सिद्धांतदर्पण' है। नागरी अक्षरों में ही पुस्तक मुद्रित हुई है और आदि में उसके सुयोग्य लेखक का एक चित्र भी है। लगभग बारह वर्ष हुए इनका देहांत हो गया।

इस वर्णन से ज्ञात होगा कि इनका विद्वानों में कितना उच्च स्थान था। खेद की बात है कि हमारे ज्योतिषियों ने इनके श्रम से अभी तक पूरा पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया। इसमें संदेह नहीं कि ये भारत के ही नहीं प्रत्युत् सारी पृथ्वी के अग्रगण्य ज्योतिषियों मे से थे। इनकी प्रशंसा करते हुए मांडर्स कहते हैं "In the recluse of the Orissa village, we seem to see re-incarnated, as it were, one of the early fathers of the science." "इस उड़ीसा के ग्राम में रहनेवाले एकांतसेवी व्यक्ति में हमको इस विद्या के प्राचीन आविर्भावकों में से किसी की पुनरवतरित मूर्त्ति का मानो दर्शन होता है।"

ऊपर के संक्षिप्त कथन में हमने कई प्राचीन ज्योतिषियों के नाम छोड़ दिए हैं। अर्वाचीन काल में काशी के महामहोपाध्याय पं० बापू देव शास्त्री और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने प्रसिद्धि पाई है, परंतु इन्होंने कोई प्रधान नवीन विवृत्ति नहीं की है।

---

(२०) यंत्र और वेधालय।

हम पहले के अध्यायों में बराबर यंत्रों और वेधालयों का कथन करते आए हैं। इस अध्याय में कुछ विशिष्ट यंत्रों और वेधालयों का उल्लेख किया जायगा जिनके द्वारा बहुत सी प्रधान विवृत्तियाँ हुई हैं।

दूरदर्शक यंत्र दो प्रकार के होते हैं, परावर्त्तनात्मक और वर्त्तनात्मक। पहले प्रकार के यंत्रों मे प्रकाश के परावर्त्तन से काम लिया जाता है और दूसरे में उसके वर्तन से। किसी पदार्थ से टकरा कर प्रकाश के किसी दिशांतर में जाने को परावर्त्तन कहते हैं। जब हम कभी सूर्य्य के सामने दर्पण रखते हैं तो प्रकाश उससे टकरा कर अर्थात् परावर्त्तित होकर दीवारों पर पड़ता है।

किसी पदार्थ में से निकल कर प्रकाश के किसी ओर जाने को वर्तन कहते हैं। सूर्य्य के प्रकाश का वायुमंडल में से हो कर आना या चश्मे के ताल में से हो कर जाना वर्त्तन का उदाहरण है।

सब से पहला दूरदर्शक यंत्र जिसको गैलिलियो ने बनाया था वर्त्तनात्मक था। नीचे एक वर्त्तनात्मक यंत्र दिया गया है। आज कल जो यंत्र बनते हैं उनके निर्म्माण का मूल सिद्धांत इसके सदृश है पर उनकी बनावट प्रायः बड़ी कठिन होती है। जहाँ इस में एक ताल है, वहाँ बड़े यंत्रों में कई तालों के समूह होते हैं।

है। इसका नाम 'सिद्धांतदर्पण' है। नागरी अक्षरों में ही पुस्तक मुद्रित हुई है और आदि मे उसके सुयोग्य लेखक का एक चित्र भी है। लगभग बारह वर्ष हुऐ इनका देहांत हो गया।

इस वर्णन से ज्ञात होगा कि इनका विद्वानों में कितना उच्च स्थान था। खेद की बात है कि हमारे ज्योतिषियों ने इनके श्रम से अभी तक पूरा पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं किया। इसमें संदेह नहीं कि ये भारत के ही नहीं प्रत्युत् सारी पृथ्वी के अग्रगण्य ज्योतिषियों मे से थे। इनकी प्रशंसा करते हुए मांडर्स कहते हैं "In the recluse of the Orissa village, we seem to see re-incarnated, as it were, one of the early fathers of the science." "इस उड़ीसा के ग्राम में रहनेवाले एकांतसेवी व्यक्ति मे हमको इस विद्या के प्राचीन आविर्भावकों में से किसी की पुनरवतरित मूर्त्ति का मानो दर्शन होता है।"

ऊपर के संक्षिप्त कथन में हमने कई प्राचीन ज्योतिषियों के नाम छोड़ दिए हैं। अर्वाचीन काल में काशी के महामहोपाध्याय पं० बापू देव शास्त्री और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने प्रसिद्धि पाई है, परंतु इन्होंने कोई प्रधान नवीन विवृत्ति नहीं की है।

---

(२०) यंत्र और वेधालय।

हम पहले के अध्यायों में बराबर यंत्रों और वेधालयों का कथन करते आए हैं। इस अध्याय में कुछ विशिष्ट यंत्रों और वेधालयों का उल्लेख किया जायगा जिनके द्वारा बहुत सी प्रधान विभूत्तियाँ हुई हैं।

दूरदर्शक यंत्र दो प्रकार के होते हैं, परावर्त्तनात्मक और वर्त्तनात्मक। पहले प्रकार के यंत्रों में प्रकाश के परावर्त्तन से काम लिया जाता है और दूसरे में उसके वर्तन से। किसी पदार्थ से टकरा कर प्रकाश के किसी दिशांतर में जाने को परावर्त्तन कहते हैं। जब हम कभी सूर्य्य के सामने दर्पण रखते हैं तो प्रकाश उससे टकरा कर अर्थात् परावर्त्तित होकर दीवारों पर पड़ता है।

किसी पदार्थ में से निकल कर प्रकाश के किसी ओर जाने को वर्तन कहते हैं। सूर्य्य के प्रकाश का वायुमंडल में से हो कर आना या चश्मे के ताल में से हो कर जाना वर्त्तन का उदाहरण है।

सब से पहला दूरदर्शक यंत्र जिसको गैलिलियो ने बनाया था वर्त्तनात्मक था। नीचे एक वर्त्तनात्मक यंत्र दिया गया है। आज कल जो यंत्र बनते हैं उनके निम्मोण का मूल सिद्धांत इसके सदृश है पर उनकी बनावट प्रायः बड़ी कठिन होती है। जहाँ इस में एक ताल है, वहाँ बड़े यंत्रों में कई तालों के समूह होते हैं।

'दी' एक दीप्त वस्तु है। इसमें से प्रकाश आ रहा है। इस के सामने 'व' एक ताल है। इस ताल में प्रकाश वर्तित होता है और 'दी' का एक प्रतिबिंब 'प्र१' बनता है। 'च' चक्षुताल अर्थात वह ताल है जिसमे से द्रष्टा देखता है और उसके पीछे द्रष्टा की आंख है। चक्षुताल की नाभि 'ना' पर है। 'प्र १', 'च' और 'ना' के बीच में पड़ा है। इसलिये एक दूसरा प्रतिबिंब 'प्र २' बनेगा। यही द्रष्टा को देख पड़ेगा। यह उल्टा है पर आकाश के पिंडों के उल्टे देख पड़ने से कोई आपत्ति नहीं होती।

यह तो बनावट का सिद्धांत है। बनावट बड़ी ही सरल है। केवल एक नली है, जिसके दोनों सिरों पर दो ताल हैं। इनको कितनी दूरी पर रखना चाहिए यह इस बात से ही स्पष्ट है कि चक्षुताल की नाभि 'प्र१' के बाहर पड़नी चाहिए। [ताल दोनों उन्नतोदर (उभरे हुए '()' इस आकार के) होने चाहिएँ। नाभि जानने के लिये सूर्य्य के सामने रखने से, जहाँ प्रकाश एकत्रित हो जाय लगभग वही विंदु है] जितने ही ताल बड़े और अच्छे होंगे उतना ही काम अच्छा देंगे, परंतु एक आपत्ति यह पड़ती है कि जब ताल बड़े बनाए जाते हैं तो प्रतिबिंब रंगीन हो जाता है और इससे ठीक ठीक अवलोकन नहीं हो सकता। इसीलिये गैलिलियो के कुछ दिनों

पीछे लोगों ने इस प्रकार के यंत्रों का प्रयोग ही छोड़ दिया। परन्तु अब हाइगेंस आदि के प्रयत्न से यह त्रुटि जाती रही और इस प्रकार के यंत्रों का प्रयोग फिर बढ़ गया है।

दूसरे प्रकार के यंत्रों के प्रयोग करनेवालों में न्यूटन का नाम प्रथम है। इस प्रकार के यंत्रों में भी अब बड़ी उन्नति हुई है। परंतु सामान्य नियम नीचे के यंत्र से समझ में आ सकता है। इसकी बनावट अत्यंत सरल है। इसमें जो कुछ परिश्रम होता है वह दर्पण में होता है। दर्पण जितना ही चिकना होगा उतना ही अच्छा काम देगा। काँच के दर्पण से धातु का दर्पण अच्छा होता है। काँच के ऊपर चाँदी चढ़ाने से सब से अच्छा दर्पण बनता है।
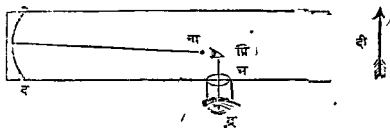
यहाँ नली के भीतर दद एक नतोदर दर्पण है। (नतोदर भीतर को झुका हुआ '‿' इस आकार का—वस्तुत. यह पाराबोला के आकार का हो तो अच्छा है) जिस स्थान पर इसकी नाभि 'ना' है उसके ठीक पीछे एक प्रिज्म 'प्रि' है। (प्रिज्म उस आकार को कहते हैं जो उन काँच के टुकड़ों का होता है जो झाड़ में लटकते रहते हैं) यदि प्रिज्म न हो तो एक दूसरा छोटा सा दर्पण तिर्छा करके रखना

होगा जिस से प्रकाश नीचे की ओर टकरा कर चला जाय। यहाँ छोटी नली के सिरे पर एक ताल 'च' लगा होता है। इस में आँख लगाने से जिस दीप्त वस्तु 'दी' के सामने दर्पण किया जाता है उसका रूप बहुत ही स्पष्ट देख पड़ता है। *

वेधालय उस घर को कहते हैं जहाँ से तारों का अवलोकन किया जाता है। उस में दूरदर्शक यंत्र, रश्मि-विश्लेषक यंत्र, फ़ोटोग्राफी का कैमरा आदि सब यंत्र रक्खे रहते हैं। वेधालय के लिये दो तीन बातों की आवश्यकता है। एक तो वह किसी ऊँची जगह पर होना चाहिए। किसी पहाड़ी की चोटी जहाँ दूर तक खुला मैदान हो बहुत अच्छा स्थान है। दूसरे उस जगह का वायुजल और ऋतुक्रम अच्छा होना चाहिए। जिस ज़गह की हवा में क्षार हो, या समुद्र से नमक के कण मिले आते हों, गर्द उड़ा करती हो, जहाँ बर्फ बहुत गिरती हो या कुहरा पड़ा करता हो वहाँ यंत्र भी बिगड़ जाते हैं और अवलोकन में भी रुकावटें पड़ती हैं। इस समय जैसे वेधालय अमेरिका में हैं वैसे कदाचित् ही कहीं होंगे।

न्यूटन के पीछे हर्शेल ने परावर्त्तनात्मक यंत्रों का बड़ा उपयोगी प्रयोग किया। उन्होंने इस काम में कितना श्रम उठाया यह उनके जीवन के प्रबंध में कहा जा चुका है। ज्यों

* 'भौतिक-विज्ञान' में ये यंत्र दिखलाए गए हैं। इस में नाभि, परावर्त्तन, वर्त्तन आदि शब्दों के अर्थ भी बतलाए गए हैं। यहाँ पर विस्तार-भय से सब बातें नहीं लिखी गई।

ज्यों अभ्यास बढ़ता गया यंत्र भी बड़ा और प्रबल होता गया, यहाँ तक कि उनके अंतिम यंत्र में नाभिस्थान दर्पण से ४० फुट पर था।

पृथ्वी में सब से बड़ा परावर्त्तनात्मक यंत्र वह है जिसको आयर्लैंड में लॉर्ड रास (Lord Ross) ने बनवाया था। इसके बराबर बड़ा कोई वर्तनात्मक यंत्र कदाचित् ही होगा। इसका बनना १८२७ में आरंभ हुआ और १८४२ में समाप्त हुआ, अर्थात् कुल मिला कर इसमें १५ वर्ष लगे। इसके परिमाण का इसी से पता लग सकता है कि दर्पण का व्यास ६ फुट है। ६ फुट का कांच का सीधा दर्पण बनाना तो कुछ कठिन नहीं है परंतु इस परिमाण का यंत्र के उपयोगी नतोदर दर्पण बनाना बड़े ही परिश्रम का काम है। इस यंत्र की नली ७ फुट ऊँची और ५८ फुट लंबी है। इसमें एक मनुष्य बड़ी अच्छी भांति चल सकता है। देखने में यंत्र एक गढ़ी के बुर्ज सा प्रतीत होता है। उसके द्वारा अवलोकन करने के लिये कई सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। यह यंत्र आयर्लैंड के पर्सस टाबन नामक स्थान में खड़ा किया गया है।

कुछ दिनों तक इस यंत्र के द्वारा कई बड़े उपयोगी काम हुए परंतु जितना इसमें धन और परिश्रम लगाया गया उतनी सफलता न हुई। उस स्थान के हवा पानी ने थोड़े ही काल में दर्पण को चौपट कर दिया। अब यह यंत्र केवल एक देखने की वस्तु रह गया है। इस से नया काम होना प्रायः असंभव है।

अब वर्त्तनात्मक यंत्रों को लीजिए। पाश्चात्य सभ्यता का आदिस्थान युरोप है, इसलिये हम पहले वहीं से चलते

हैं। इंग्लैंड के ग्रीनिच और फ्रांस के पैरिस वेधालय में बहुत उपयोगी काम हुआ है। रूस, जर्मनी और इटली में भी प्रसिद्ध वेधालय हैं जिन में स्मरणीय विवृत्तियां हुई हैं।

परंतु अब इनमें से अधिकांश की प्रधानता केवल ऐतिहासिक है। पृथ्वी के बड़े ज्योतिषियों ने जिनमें से कुछ के संक्षिप्त जीवनचरित हम दे चुके हैं, इनमें किसी समय काम किया है। प्रायः सभी प्रसिद्ध विवृत्तियां इनमें ही हुई हैं, और परंपरा के प्रताप से अब भी इनमें कई योग्य ज्योतिषी पाए जाते हैं। किंतु जितने विशाल वेधालय और दीर्घकाय और प्रबल यंत्र अमेरिका में इस समय वर्त्तमान हैं, वैसे युरोप में नहीं हैं। अमेरिका नया देश है, उसका उत्साह नया है और उसके पास धन बहुत है। यद्यपि युरोप के प्रायः सभी बड़े वेधालय राष्ट्रों की ओर से हैं और अमेरिका के वेधालय प्रजावर्ग में से व्यक्तियों के खोले हुए हैं, पर इन्होंने उनको दबा दिया है। आशा है कि भविष्य में इनमें भी वैसी विवृत्तियां होंगी, जैसी कि युरोप में हुई हैं जिनसे कि धन और श्रम दोनों सुफल होंगे।

अमेरिका के वेधालयों में तीन प्रधान हैं। पहले का नाम लिक वेधालय है। मिस्टर लिक नाम के एक करोड़पति महाजन थे। उनकी यह इच्छा थी कि अपना और अपनी स्त्री का कोई स्थायी स्मारक छोड़ जाँय। इस उद्देश्य से उनका यह विचार था कि पेसिफिक महासागर (शांत महासागर) के किनारे अपनी दोनों की दो विशाल मूर्त्तियाँ बनवाएँ। भाग्य से उनसे एक ज्योतिषी से भेंट हो गई। उसने उन्हें समझाया

कि मूर्तियाँ स्थायी नहीं हो सकतीं। यदि कभी युद्ध छिड़ जाय तो उनके नाश होने की संभावना हो सकती है। यह बात लिक साहब की समझ में भी आ गई और उन्होंने यह विचार किया कि एक ऐसा दूरदर्शक यंत्र बनवाया जाय जैसा पृथ्वी भर में कहीं न हो। उनका विचार पहले यंत्र तक ही गया था परंतु बिना उपयुक्त वेधालय के यंत्र का होना व्यर्थ है। इसीलिये वेधालय भी निर्म्मित हुआ। यह पृथ्वी से ४००० फुट ऊँची एक पहाड़ी पर है और सन् १८८८ में बन कर तैयार हुआ है। इसका ताल ३६ इंच व्यास का है। यह स्मरण रखना चाहिए कि तालों के उतने बड़े होने की आवश्यता नहीं है जितने बड़े दर्पण होते हैं।

उस समय यह वस्तुतः सब से बड़ा यंत्र था परंतु एक दूसरे करोड़पति मिस्टर यर्क्स ने इससे भी बड़ा एक यंत्र बनवाया। इनके रुपए से शिकागो विश्वविद्यालय में जो यंत्र बना है उसका ताल ४० इंच का है। यह १८९८ में खड़ा किया गया। इस समय यह पृथ्वी पर सब से प्रबल यंत्र है।

मिस्टर कार्नेगी एक बहुत ही बड़े दानवीर करोड़पति हैं। इन्होंने विद्या की उन्नति के लिये बहुत रुपया व्यय किया है, एक वेधालय भी खुलवाया है। इसमें एक परावर्तनात्मक यंत्र है जो लार्ड रास के यंत्र से भी बड़ा है। यह भी एक पहाड़ी के ऊपर स्थित है।

इनके अतिरिक्त प्रोफेसर लावेल का वेधालय भी प्रसिद्ध है। ये सब बड़े वेधालय हैं। इनके सिवाय हार्वर्ड कालेज वेधालय और कार्डोवा वेधालय में भी अच्छा काम हो रहा

है, यद्यपि इनके पास वैसी सामग्री नहीं है।

इन वेधालयों में कार्य करना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। ज्योतिषियों को अत्यंत सहिष्णुता का अवलंबन करना पड़ता है। ये नगरों से दूर हैं और इसलिये समय समय पर आवश्यक वस्तुओं के लिये भी कष्ट उठाना पड़ता है। लिक वेधालय के एक ज्योतिषी का कथन है कि एक साल सर्दी में सारा पानी जम गया और उन लोगों को एंजिन का पानी पीना पड़ा। परंतु इन कष्टों के साथ साथ एक प्रकार का आनंद भी मिलता है। जो लोग इतना आत्मोत्सर्ग करके सरस्वती की उपासना करते हैं उनका चित्त एक अपूर्व उत्साह से भरा होता है जो उनके सब क्लेशों को तुच्छ प्रतीत करा देता है। जैसा कि प्रोफेसर लावेल कहते हैं—'ऐसी अवस्था में काम करना' is almost to forget one's self a man ''अपना मनुष्य होना भूल जाना है'। मनुष्य एक प्रकार का दिव्य प्राणी हो जाता है।

यहाँ पर थोड़ा सा वृत्तांत रश्मिविश्लेषक यंत्र का भी दे देना आवश्यक है, क्योंकि ज्योतिष में इससे बहुत बड़ा काम निकाला जाता है।

जिसको हम श्वेत रंग कहते हैं वह वस्तुतः कई रंगों के मिश्रण से बना है। श्वेत प्रकाश के पथ में प्रिज़्म रखने से ये रंग अलग अलग देख पड़ते हैं। इनमें बैंगनी, नील, श्याम, हरित, पीत, नारंगी और रक्त मुख्य हैं। यदि इस प्रिज़्म के पास एक उल्टा प्रिज़्म रख दिया जाय तो फिर केवल श्वेत रंग रह जाता है। सब रंग मिल कर फिर श्वेत बन जाता है।
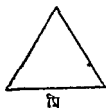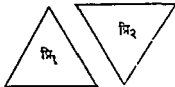
इन दोनों चित्रों से यह बात स्पष्ट समझ में आ जाती है। रश्मिविश्लेषक यंत्र में मूल वस्तु एक प्रिज्म है। जब इस प्रिज्म

पर किसी दीप्त वस्तु से आई हुई प्रकाश की किरणें पड़ती हैं तो यह उनका विश्लेषण (अलग अलग करना) कर देता है। अब इसका प्रयोग देखिए।

सब से पहले फ्रानहोफ़र ने सूर्य्य के प्रकाश का इसके द्वारा नियमित अवलोकन किया। उनको इस प्रकार का वर्णच्छत्र (Spectrum) मिला। (किसी दीप्त वस्तु के प्रकाश के विश्लेषण से नाना रंगों का जो पर्दा सा देख पड़ता है उसको उस वस्तु का वर्णच्छत्र कहते हैं)।

उपकासनी बैंगनी नीला श्याम हरित पीत नारंगी रक्त रक्तातीत
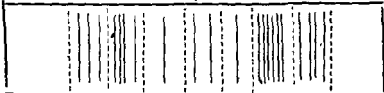
वस्तुतः वर्णच्छत्र का रूप इस से कठिन है। यह अत्यंत सरल कर दिया गया है।

प्रत्येक रंग के बीच में कुछ काली काली धारियां देख पड़ीं। बहुत दिनों तक इन के होने का कारण समझ में न आया। फिर एक महत्त्वपूर्ण विवृत्ति हुई उस को समझाने के लिये हम एक उदाहरण देते हैं।

सोडियम एक तत्त्व विशेष है। उसके जलने से पीला प्रकाश उत्पन्न होता है। यह तत्त्व नमक में बहुत पाया जाता है। इस संबंध में एक बात स्मरण रखने के योग्य है। यदि यह पदार्थ ठोस हो तो इसका वर्णच्छत्र बराबर एक-सा होता

है। यदि पदार्थ वाष्प के रूप में हो तो वर्णच्छत्र में बीच बीच में चमकती हुई धारियां होती हैं और यदि इस वाष्प के भीतर से उसी ठोस पदार्थ का प्रकाश देखा जाय तो इन चमकती धारियों के स्थान में काली धारियां पड़ जाती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ जब वह वाष्प रूप में होता है तो उस रंग की रश्मियों को रोक देता है जो उसमें से ठोस रूप में निकलती हैं।

इस बात को ध्यान में रख कर ज्योतिषियों ने सूर्य्य के वर्णच्छत्र पर विचार किया तो उस में उन्हीं स्थानों पर काली धारियां मिलीं जिन स्थानों पर कई तत्त्वों की चमकीली धारियाँ होती हैं। जैसे, सोडियम के वर्णच्छत्र में कुछ नियमित स्थानों पर और एक दूसरे से नियमित दूरी पर पीली धारियाँ होती हैं। सूर्य्य के वर्णच्छत्र में ठीक उन्हीं स्थानों पर और उतनी ही दूरियों पर काली धारियाँ पाई गईं। इस से सूर्य्य में सोडियम के होने का पूरा प्रमाण मिल गया। इसी प्रकार अन्य पदार्थों के अस्तित्व के भी प्रमाण मिलते हैं और इसी प्रकार अन्य तारों के प्रकाश की भी परीक्षा होती है।

यद्यपि हम सूर्य्य और तारों तक पहुँच कर इसकी सचाई की परीक्षा नहीं कर सकते परंतु हम को इस में संदेह नहीं हो सकता, क्योंकि पृथ्वी पर जब इसने जिस जगह जिस पदार्थ के होने का पता दिया है, तब वहां वह पदार्थ बराबर मिला है। हां, यदि कोई पदार्थ ऐसा हो जो कि वाष्प में परिणत हो कर किसी प्रकार का प्रकाश ही न देता हो तो उसका अस्तित्व इसके द्वारा ज्ञात नहीं हो सकता।

ये तो प्रधान यंत्र हैं। इनके अतिरिक्त फोटो का कैमेरा भी एक उपयोगी यंत्र है। इसके सिवाय कई और गणित-विषयक यंत्र होते हैं जिनसे ज्योतिष में तारों की या ग्रहों की गति देखने में सहायता मिलती है।

---

(२१) अंतिम विचार।

अब हम यहां पर ज्योतिष-रहस्य को समाप्त करते हैं। इस संक्षिप्त वृत्तांत में हम ने पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्य आदि सौर-चक्र के पिंडों से ले कर तारों तक के विषय में कई उपयोगी और स्मरण योग्य बातें लिखी हैं, जिनको पढ़ कर चित्त में कई प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं।

सब से पहले ज्योतिष विद्या का महत्त्व चित्त में घर करता है। जैसा कि मांडर्स कहते हैं, अकाश का अवलोकन करते समय "It is Nature at her vastest that we approach, we look up to her in her most exalted form. We see unrolled before us the volume which the finger of God has written: we stand in the dwelling-place of the Most High" "हम प्रकृति की सब से विशाल मूर्ति के पास जाते हैं और उसके सब से दिव्य रूप का दर्शन करते हैं। हमारी आँखों के सामने वह पुस्तक खुली रहती है जिसको ईश्वर ने लिखा है; हम परमेश्वर के निवासस्थान में खड़े होते हैं।" इसमें संदेह नहीं कि विज्ञान के सभी अंग रोचक और उपयोगी हैं और सभी हमको प्रकृति के रहस्यों से परिचित कराते हैं; परंतु इन में से कोई अन्य अंग ज्योतिष की तुलना नहीं कर सकता। ज्योतिषी अपनी आँखों से जगत् के नाटक के सब दृश्यों को देखता है। एक ओर नभस्तूपों में संगठन हो रहा है और

नए पिंडों की सृष्टि हो रही है, दूसरी ओर मृत सूर्यों का प्रज्वलन हो रहा है और प्राचीन पिंडों का विनाश हो रहा है। जिन दृश्यियों के देखने का और कोई पात्र नहीं है, जिनके देखने से प्राचीन काल के ज्योतिषी भी वंचित थे, उनको देखने का सौभाग्य आज कल के ज्योतिषियों को प्राप्त है। इस विद्या की प्रशंसा जहाँ तक की जाय थोड़ी है।

इसके साथ ही हमको मनुष्य की बुद्धि की भी प्रशंसा करनी पड़ती है। एक छोटे से तारे के एक छोटे से ग्रह पर रहनेवाला एक छोटा सा प्राणी—इस की बुद्धि कैसी बलवती है कि उसकी सहायता से इसने दिशा और काल को जीत लिया है। उसने इसकी इंद्रियों की शक्तियों को सहस्रों गुणा बढ़ा दिया है। जो बातें आज से लाखों वर्ष पहले हुई थीं, जो बातें आज से लाखों वर्ष पीछे होंगी, जो बात यहाँ से लाखों कोस की दूरी पर हो रही है उन सब को हम अपनी बुद्धि के सहारे देखते हैं और जानते हैं। यहाँ से बैठे बैठे हम को इस बात का पता लग जाता है कि किस तारे का क्या परिमाण है, वह किन तत्त्वों से बना है और उसकी गति कितनी और कैसी है? सचमुच यदि शिक्षा का प्रबंध और उत्तम हो और प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि को पूर्ण विकास का अवसर मिले तो न जाने हमारे ज्ञान, सभ्यता और संपत्ति की कितनी वृद्धि होगी और मनुष्य जाति के सुख की क्या मात्रा होगी। जब मनुष्य के पास कोई उपयोगी काम नहीं होता तभी वह भांति भांति के पापों और दुष्कर्मों में लगता है। यदि लोगों के चित्त ज्योतिष की भांति पवित्र विद्याओं के अध्ययन में लग

जाँय तो वे प्रकृत्या बुरी बातों से पराङ्मुख हो जाँय।

हमारे दो तीन स्वाभाविक विचारों को आधुनिक ज्योतिष की विवृत्तियों से कड़ी चोट पहुँचती है। साधारणतः हम समझते हैं कि दिशा और काल सर्वव्यापक हैं। वेदांतादि दर्शन शास्त्र इस विचार का विरोध करते हैं परंतु सर्वसाधारण की दृष्टि में ये नित्य और सर्वव्यापक ही हैं।

परंतु ज्योतिष हमको विचित्र अनुभव कराता है। हम को दिशा का ज्ञान कैसे होता है? हम अपने चारों ओर भिन्न भिन्न वस्तुओं को देखते हैं। हमको इन में से किसी एक तक पहुँचने के लिये चलना पड़ता है। किसी में कम चलना होता है, किसी में अधिक। कोई हमारे दाहने हाथ से निकट पड़ती है, कोई बाएँ हाथ से; कोई मुँह से और कोई पीठ से। बस यही वस्तुओं का नानात्व और उसका फल, अर्थात् चलना ही हम को दिशा का ज्ञान कराता है। परंतु अंतरिक्ष में, अर्थात् उस शून्य अवकाश में जो इस दृश्य जगत् के बाहर है, क्या है? वहाँ किसी प्रकार का कोई पिंड नहीं है। इसलिये न वहाँ दूरी हो सकती है, न चलना आवश्यक है। इसलिये वहां दिशा का भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

अब काल को लीजिए। जो बात हो गई वह भूत काल में हुई, जो हो रही है वह वर्तमान काल में हो रही है, जो होगी वह भविष्य काल में होगी। इस प्रकार हम ने काल के तीन विभाग कर लिए हैं। पर अब विचार कीजिए। कई तारे हम से इतनी दूर हैं कि प्रकाश को उनसे चल कर हमारे पास पहुँचने में तीन तीन सौ वर्ष या इससे भी अधिक लगते हैं। हम

कितने ही मृत सूर्यों को जल उठते देखते हैं । परंतु हमारे यहाँ यह दृश्य वास्तविक घटना के सैकड़ों वर्ष पीछे देख पड़ता है। इस समय जो बात उस तारे की दृष्टि से भूत काल में हुई वही हमारी दृष्टि से वर्तमान काल में हो रही है। उनका भूत हमारा वर्त्तमान है। इसी प्रकार आज से लाखों वर्ष पीछे सूर्य्य का नाश होगा। वह समय हमारे लिये भविष्य है परंतु किसी के लिये वर्त्तमान होगा। जो एक का भूत है वही दूसरे का भविष्य और तीसरे का वर्त्तमान है। यदि कोई नित्य और स्थायी हो तो उसके लिये सदैव वर्त्तमान हो। जैसा कि कार्लाइल ने कहा है–'ईश्वर के लिये न भूत है, न भविष्य है, उसके लिये नित्य वर्त्तमान काल है।'

इतना ही नहीं, और विचार कीजिए कि काल है क्या? हम को एक अनुभव के पीछे दूसरा अनुभव होता है, इसी से हम को काल का ज्ञान होता है । यदि पृथ्वी अक्षभ्रमण न करती तो हमको 'दिन' की कल्पना न होती; यदि पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा न करती तो हमको 'वर्ष' की कल्पना न होती और यदि चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा न करता तो हम को 'मास' की कल्पना न होती। जहाँ अनुभवक्रम का अभाव हो, वहाँ समय या काल का अभाव है। तारों के बीच में क्या है? तारों के बाहर शून्य अवकाश में क्या है? वहाँ एकरस अखंड समता है।-इसलिये वहाँ काल भी नहीं है।

हमारी बुद्धि पहले इन नूतन विचारों से घबराती है परंतु जितना ही हम इन का मनन करते हैं चित्त का विकाश उतना ही अधिक होता है।

अंत में हम फिर विश्व के विस्तार की ओर आते हैं। इसका पहले भी अनेक बार वर्णन हो चुका है। सौरचक्र का ही विस्तार इतना बड़ा है कि उसको बुद्धिगत करना एक प्रकार से असभव है। तारामंडल का तो कहना ही क्या है। सौरचक्र के भीतर हम कोसों से काम लेते हैं, इसके बाहर हमको प्रकाश की असाधारण गति का आश्रय लेना पड़ता है। परतु जब हम देखते हैं कि इस दृश्य जगत् में ऐसे तारे हैं जिन की दूरी सहस्रों ज्योतिर्वर्ष है तो हम को अगत्या हार माननी पड़ता है। जो तारा हम से निकटतम है वह भी इतनी दूर है कि बीच के अवकाश में ९२५० सौरचक्र रक्खे जा सकते हैं।

पृथ्वी स्वयं एक जगत् है। चंद्रमा उसकी परिक्रमा करता है। चद्रमा और पृथ्वी मिल कर हमारा पार्थिव चक्र बनाते हैं। इस प्रकार के अनेक चक्र सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य्य के साथ सौरचक्र बनाते हैं। सहस्रों सौरचक्र एक एक ताराप्रवाह में होते हैं और दृश्य जगत् में सैकड़ों ताराप्रवाह हैं। प्रति क्षण उत्पत्ति और प्रति क्षण विनाश हो रहा है। यह क्रम कब आरंभ हुआ और कब समाप्त होगा? क्या इसके लिये आदि और अत है? इसके पहले क्या था, इसके पीछे क्या होगा? इसके बाहर, घोर शून्य के उस पार, कुछ है भी या नहीं? यदि है तो क्या है? यह बड़े मनोहर प्रश्न हैं पर इनका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है।

संभवतः और पिंडों पर भी प्राणी हैं। उन्होंने भी वैज्ञानिक, दार्शनिक और धार्मिक तत्वों का अन्वेषण किया होगा,

उन्होंने भी उन्नति की होगी और स्यात् वे हम से ज्ञानवृद्ध भी होंगे। इस अनंत ब्रह्मांड में हमारा स्थान क्या है? जैसा कि फ्लैमेरिअन का कथन है-"The life of our proud humanity, with all its religions and political history, the whole life of our entire planet, is but the dream of a moment" "हमारे सारे धार्मिक और राजनैतिक इतिहास को लेते हुए हमारी अभिमान पूर्ण मनुष्य-जाति का जीवन, हमारे संपूर्ण ग्रह का समस्त जीवन, एक क्षणिक स्वप्न के तुल्य है।"

इस सारे विश्व में एक शक्ति काम कर रही है। छोटे से छोटा नभस्तूपकण और बड़ा से बड़ा ताराप्रवाह-सभी उस सर्वोपरि आकर्षण के अनिवार्य्य नियम के वशवर्त्ती हैं। यह किसी में सामर्थ्य नहीं जो उच्छृंखल व्यवहार कर सके। जैसा कि टेनिसन ने कहा है 'Nothing is that errs from Law' 'ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो नियम के विरुद्ध काम कर सके'। यदि किसी स्थल में हमको नियम का अभाव प्रतीत होता है तो यह हमारा दृग्भ्रम है, वास्तविक अभाव नहीं है। इस सर्वव्यापक नियम का बनानेवाला कौन है? नियम का महत्त्व नियामक के महत्त्व का सूचक है। एक समय था जब कि वैज्ञानिक लोग इस मत का विरोध करते थे और पाश्चात्य विज्ञान ने नास्तिकता को ही अपना धर्म्म मान लिया था, परंतु अब वे दिन गए। विज्ञान के प्रसिद्ध आचार्य्य लाज का कथन है—'The region of true religion and the region of a completer science are one.'

"सच्चे धर्म्म और परिपक्व विज्ञान का समन्वय एक ही स्थान में होता है।" इनका यह भी कहना है—"We can see Him now if we look, if we cannot see, it is only that our eyes are shut" "हम यदि आँख खोल कर देखें तो हम ईश्वर को अभी देख सकते हैं, हमारे न देखने का कारण यह है कि हमारी आँखें बंद हैं।" इसका तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर की रचना हम को प्रति क्षण उसका साक्षात्कार कराती है। वस्तुत हम ज्योतिष के द्वारा ईश्वर के इस वेदोक्त गुण-संकीर्त्तन के भाव को कुछ कुछ समझने लगते हैं। "यत्र वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"-ईश्वर के महत्त्व को समझना मनुष्य की बुद्धि के बाहर है और जो कुछ समझ में आ भी जाय तो उसको कथन करने में शब्द सर्वथा असमर्थ हैं।

---

(२२) परिशिष्ट।

१. ज्योतिष के अध्ययन करने की इच्छा करने-वाले के लिये कुछ उपयोगी बातें।

(क) आँख का प्रयोग—कितने लोग ज्योतिष के नाम से इसलिये घबराते हैं कि उनके चित्त मे यह विचार बैठ गया है कि विना महँगे यंत्रों के ज्योतिष का पढ़ना हो ही नहीं सकता। इस डर से वे केवल पुस्तकों को पढ़ कर ही रह जाते हैं। यह उनकी भूल है। खेद की बात तो यह है कि इस भूल ने बहुत दूर तक अपना घर कर लिया है। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि बहुत से पंडित लोग जो ज्योतिषी कहलाते हैं, जिनके नाम से पंचांग निकलते हैं, जो विद्यार्थियों को ज्योतिष पढ़ाते हैं, ज्योतिष के मूल से ही अनभिज्ञ हैं। वे गणना सब करते हैं पर न तो वे राशियों को पहचानते हैं और न उन्होंने नक्षत्रों को देखा है। ग्रहों में भी वे कदाचित् शुक्र और गुरु को छोड़ कर किसी और को न पह-चानते होंगे। इसीलिये उनके पंचांगों में भी अशुद्धियाँ रह जाती हैं। यह अंधपरंपरा जब से चली है, हिंदू ज्योतिष ने उन्नति को जलांजलि दे दी है।

कितनी बातें ऐसी हैं जो आँख से भली भाँति देखी जा सकती हैं। राशि और नक्षत्र, ताराव्यूह, चंद्र और ग्रहों की गति, बड़े बड़े केतुओं की गति—इन सब के लिये किसी

यंत्र विशेष की आवश्यकता नहीं है। प्रोफ़ेसर मांडर्स का कथन है कि बड़े यंत्रों में एक। त्रुटि होती है जिस से आँख मुक्त है। यंत्र से हम एक साथ आकाश के बहुत ही छोटे टुकड़े को देख सकते हैं, परंतु आँख के सामने सप्रति बड़ा क्षेत्र आता है। इसलिये यदि कभी किसी एक पिंड का विशेष रूपेण अवलोकन करना हो तब तो यंत्र परम उपयोगी होते हैं, अन्यथा जहाँ कई पिंडों के समूह को अवलोकन करना हो वहाँ आँख ही अच्छा काम देती है।

इस बात को समझाने के लिये उन्होंने एक उदाहरण दिया है। अमेरिका में रेड इंडियन नामक एक जाति के असभ्य आदिम निवासी रहते हैं। कुछ दिन हुए इन्हों ने उत्पात करना आरंभ किया। वहाँ की सरकार ने उनके कुछ सर्दारों को एकत्र करके उनके सामने बड़ी बड़ी तोपें मँगवाईं और छुड़वाईं। उनका उद्देश्य यह था कि ये लोग इन से डर जाँय, परंतु इन सर्दारों की आकृति से भय का कोई भी लक्षण प्रतीत न हुआ। दूसरी बार अमेरिकन अफसरों ने और भी धूमधाम से तोपें छोड़ीं फिर भी वे जंगली सर्दार ज्यों के त्यों देखते रहे। अंत में, उन में से एक ने मुस्कुरा कर कहा— "तुम इन तोपों को ले कर हम से लड़ने नहीं आ सकते"।

अफसर लोग अवाक् रह गए। अब यह बात उनकी समझ में भी आई। तोप का काम तो वहाँ पड़ता है जहाँ बड़े बड़े गढ़ होते हैं या लाखों मनुष्यों की सेनाएँ सामने खड़ी होती हैं। जंगलों में जहाँ शत्रु दूर दूर पर फैले हुए हैं तोपों का ले जाना केवल मोह होता है।

मांडर्स का कथन है कि, ठीक उसी प्रकार जैसे कि इन जंगलियों से लड़ने के लिये या चिड़ियों के मारने के लिये बड़ी तोपें अनावश्यक ही नहीं प्रत्युत हानिकारक हैं, उसी प्रकार ज्योतिष संबंधी बहुत से कामों में बड़े यंत्र अनावश्यक एवं हानिकारक होते हैं।

यंत्रों से कई लाभ होते हैं, इसमें संदेह नहीं। ग्रहों के पृष्ठ, द्विदेहिक तारे, शनि के वलय आदि दृश्य बिना यंत्रों के नहीं देखे जा सकते। परंतु विस्तृत आकाश का सौंदर्य उसी के लिये है जो तारों के मुख्य व्यूहों से परिचित है और अपनी आँखों से काम लेता है। इन परिचित पिंडों के अवलोकन में एक प्रकार का दिव्य आनंद मिलता है और साथ ही साथ आँख, हाथ और चित्त को उपयोगी शिक्षा भी मिलती है। मांडर्स महाशय की सम्मति है कि आकाशगंगा, उल्का, ताराव्यूह के अवलोकन के लिये आँख ही उपयुक्त यन्त्र है।

(ख) यंत्र—जिन जिन कामों में आँख उपयोगी है, यदि उन कामों में उसको एक छोटे से यंत्र की भी सहायता मिल जाय तो उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाय। एक ऑपेरा ग्लास (Opera glass) [वह छोटी सी दूरबीन जिसको लोग थियेटरों में या इसी प्रकार के अन्य स्थलों में ले जाते हैं] भी बहुत कुछ सहायता दे सकता है। थोड़े से व्यय और परिश्रम से न्यूटन के यंत्र के सदृश एक परावर्त्तनात्मक यंत्र बन सकता है। इस यंत्र का जो कुछ वर्णन किया गया है वह पर्य्याप्त होना चाहिए। यदि प्रिज्म न मिल सके तो एक

छोटा सा दर्पण भी काम दे सकता है। उसको ऐसे तिर्छा करके रखना चाहिए कि बड़े दर्पण से आया हुआ प्रकाश उस छोटे से दर्पण से टकरा कर चक्षुताल की ओर हो जाय। हाँ, उसको बड़े दर्पण की नाभि पर ही रखना चाहिए। ऐसी कई दूकानें हैं जो सायंस पढ़ाने की सामग्री बेचती हैं। इनसे ताल आदि मिल सकते हैं। एक और उपयोगी यंत्र है जो घर पर बन सकता है। इसको दिगंश-कोटि यंत्र (Altazimuth) कहते हैं। इसके बनाने की युक्ति यह है—

एक पतले टिन या मोटे काग़ज की ५ फ़ुट ४ इंच लंबी नली लीजिए। इस नली के एक मुँह पर मोटे कागज का एक गोल टुकड़ा इस प्रकार चिपका दीजिए कि मुँह बंद हो जाय। इस गोल टुकड़े के ठीक बीच में एक सूक्ष्म छेद कीजिए जिसका व्यास $\frac{1}{16}$ इंच से बड़ा न हो (यहाँ मोटे कागज से हमारा उस कागज से तात्पर्य्य है जो पतली जिल्द बांधने के काम में आता है या जिसके डब्बों में अंग्रेजी जूते बिकते हैं) नली के दूसरे सिरे पर एक काग़ज का ऐसा टुकड़ा चिपका दीजिये जो पहले तेल से चिकना कर लिया गया हो। यदि यह नली सूर्य्य के सामने इस प्रकार की जाय कि छेदवाला सिरा सूर्य्याभिमुख हो तो चिकने काग़ज पर सूर्य्य का बहुत ही स्पष्ट प्रतिबिंब पड़ जायगा। देखते समय इस प्रकार से ओट कर लेना चाहिए कि दर्शक के मुँह पर प्रकाश न पड़े, नहीं तो प्रतिबिंब भी स्पष्ट न दीखेगा। इसके लिये एक गोल मोटे काग़ज में छेद करके उसको नली में पहना सकते हैं।

फिर एक लकड़ी या कागज के गोल टुकड़े को लेना चाहिए जिस पर अंशों में बँटा हुआ एक गोल वृत्त बना हो। एक वृत्त में ३६० अंश होते हैं। इस प्रकार के टुकड़े सायंस के सामान की दुकानों पर बिकते हैं और अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़नेवाला एक स्कूल-लीविंग का विद्यार्थी भी थोड़े परिश्रम से प्रोट्रैक्टर (Protractor) से बना सकता है।

अब इस नली को किसी चौखट में इस प्रकार जमाना चाहिए कि यह ऊपर नीचे बिना रुकावट के चक्कर खा सके और जब कस दी जाय तो स्थिर हो जाय। जमाने का प्रकार नीचे के चित्र में दिया है—
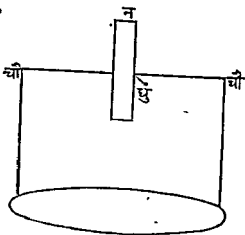
इस चित्र में न नली है और चौचौ चौखट है। दोनें मोटी काली धारियाँ पीतल या लकड़ी के कड़े हैं। घु एक घुंडी या पेंच है।

जब पेंच ढीला कर दिया जाता है तो नली को हम जितना चाहें ऊपर नीचे घुमा सकते हैं। जब पेंच कस दिया जाता है तो नली स्थिर हो जाती है।

फिर जो अंशों में बँटा हुआ काग़ज या लकड़ी का टुकड़ा है उसको इस नली के बगल में खड़ा कर के लगा दीजिए। इस प्रकार लगाना चाहिए कि उसका केंद्र इस नली के मध्य बिंदु के ठीक सामने हो। नली में मोम से दोनें सिरों के पास कोई पिन के सदृश नुकीली वस्तु लगा दीजिए (लोहे के पतले तार या तागे से लगाना अच्छा है क्योंकि मोम गल सकती है) इससे लाभ यह होगा कि हम इस नुकीली वस्तु को उस गोल पर के किसी निशान के सामने कर देंगे, फिर जब नली को घुमाएँगे तो नोक किसी दूसरे निशान के सामने हो जायगी और हम को ज्ञात हो जायगा कि नली कितने अंश घूमी है।

अब आधा काम समाप्त हो गया। जैसा कि ऊपर चित्र से विदित होता है, चौखट का पेंदा गोल है। इस गोल पेंदे को पहले के सदृश अंशों में बँटे हुए लकड़ी के एक तख्ते पर जमा देना चाहिए। जमाते समय इस बात का ध्यान रहे कि पेंदे और तख्ते के केंद्र एक ही स्थान पर हों। पेंदे में भी दो नोकदार वस्तुएँ लगा देनी चाहिएँ और इस प्रकार जमाना चाहिए कि पेंदा तख्ते पर घूम सके और इन नोकों से घूमने का अंश देखा जा सके। जब चौखट का पेंदा घूमेगा तो नली इत्यादि को लेकर समूचा चौखट घूम जायगा।
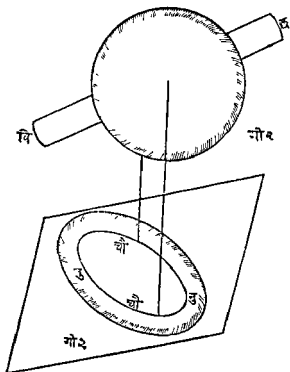
यह समूचे यन्त्र का चित्र है। चिछ नली है। चि उसका चिकने कागज वाला सिरा है और छ छिद्र-वाला, गो १ अंशों में बँटा हुआ गोल टुकड़ा है। चौचौ चौखट का पेंदा अर्थात् नीचे का घूमने-वाला तख्ता है। 'गो२' नीचे अंशों में बँटा हुआ गोल तख्ता है जिस पर चौखट घूमता है। तुतु चाखटे के पेंदे में लगे हुए दोनों नुकीले टुकड़े हैं जो उसके घूमने के अंशों को बतलाते हैं।

नली में जो नुकीला टुकड़ा लगाया जाय उसको इस प्रकार मोड़ कर लगाना चाहिए, जिससे कि वह घूम कर 'गो १' के ऊपर आ जाय और नली के घूमने के अंशों को बतला सके।

यह एक अत्यंत उपयोगी यंत्र है और बहुत थोड़े व्यय और परिश्रम से बन सकता है। अब इसके प्रयोग को देखिए।

ज्योतिष में याम्योत्तर रेखा (meridian) के जानने की प्रायः बड़ी आवश्यकता पड़ती है। यह वह रेखा है जो लगभग सिर के ऊपर उत्तर से दक्षिण को जाती है। इस यंत्र से उसका पता इस प्रकार ठीक ठीक लग सकता है। पहले दोपहर के समय नली को सूर्य्य के सामने कर के दोनों गोलों को पढ़ लीजिए। फिर दोपहर के पीछे नली के पेच को कसकर उसको स्थिर रखते हुए चौखट को घुमाइए, यहाँ तक कि नली में से फिर सूर्य्य देख पड़े। नली तो स्थिर है, इसलिये सूर्य्य उस में से उसी समय देख पड़ेगा जब कि वह आकाश में उतना ही ऊँचा (या नीचा) हो जितना कि सबेरे था। चौखट जितने अंश घूमा वह नीचे के गोले से ज्ञात हो जायगा, बस उसके पूर्व और वर्त्तमान स्थानों के बीच की दिशा याम्योत्तर रेखा की दिशा है। जैसे, मान लीजिए कि सबेरे जब नली का मुँह पूर्व की ओर था, उस समय चौखट पर के दोनों नोक नीचे के गोल पर ३० अंश और २१० अंश के सामने थे। संध्या में जब उसका मुँह पश्चिम की ओर गया तो वही नोक १८० और ३६० पर पहुँचे तो ३० और १८० के बीच में १०५ है और २१० और ३६० के बीच में २८५ है। बस १०५ और २८५ की जोड़नेवाली रेखा याम्योत्तर रेखा है।

प्रायः ज्योतिष की पुस्तकों में, या तारों के नकशों में यह लिखा रहता है कि अमुक दिन इतने बजे अमुक नक्षत्र या

राशि या ग्रह याम्योत्तर रेखा पर होगा। यदि इस रीति से रेखा निश्चित हो जाय तो पहचानने में सहायता मिले। '

इतना ही नहीं, इस यंत्र से और भी कई लाभ हैं। इस से हम यह देख सकते हैं कि सूर्य्य याम्योत्तर रेखा पर जिस समय आता है उस समय उसकी ऊँचाई कितने अंश होती है। यह ऊँचाई हमको ऊपर के गोलक से ज्ञात होगी। क्योंकि वह बतलावेगा कि हमको सूर्य्य को देखने के लिये अपनी नली कितनी ऊँची करनी पड़ी। ज्यों ज्यों गर्मी की ऋतु आवेगी सूर्य्य ऊँचा होता जायगा यहाँ तक कि २१ जून के लगभग वह सबसे ऊँचा होगा। इसी प्रकार सर्दी में नीचा होता होता २१ दिसंबर के लगभग सब से नीचा होगा। सब से अधिक और सब से कम ऊँचाई के बीच की ऊँचाई उस समय की होगी जब दिन रात बराबर होंगे। अधिकतम और अल्पतम ऊँचाइयों के घटाने से जितने अंश आते हैं उनका आधा पृथ्वी के क्रांतिवृत्त और मध्यरेखा के बीच का कोण है।

इस प्रकार की उपयोगी बातें इस यंत्र की सहायता से जानी जा सकती हैं। सब से बड़ा दिन, सब से छोटा दिन, सूर्य्य के उत्तरायण मार्ग की सीमा, दक्षिणायन मार्ग की सीमा, सायन तिथि (जब दिन रात बराबर होते हैं), क्रांतिवृत्त का झुकाव, वर्ष की लंबाई इत्यादि सब इस से ज्ञात हो सकते हैं। (वर्ष की लंबाई जानने की रीति यह है कि किसी तिथि को देख लीजिए कि सूर्य्य याम्योत्तर रेखा को किसी एक दिशा में जाते हुए कितने बजे आरोहण करता है। एक दिशा

से तात्पर्य्य यह है कि या तो सूर्य्य उत्तरायण हों या दक्षिणायन। फिर देखिए कि सूर्य्य उसी दिशा में पहुँच कर इस रेखा को किस तिथि में कितने बजे आरोहण करता है । इन दोनों तिथियों और समयों का अंतर वर्ष की लंबाई है।) एक ऐसे सरल यंत्र से इतना काम निकल जाना बहुत है । जितने ही परिश्रम से यंत्र बनाया और बैठाया जायगा और अंशों के ठीक ठीक पढ़ने का जितना ही अच्छा प्रबंध किया जायगा उतना ही यह ठीक ठीक काम देगा । नहीं तो एक या दो दिन का अंतर इसकी बतलाई हुई और वास्तविक तिथियों में पड़ा करेगा ।

साधारण रश्मिविश्लेषक यंत्र भी घर पर बन सकता है। पर उस से विशेष काम तब निकल सकता है जब प्रत्येक द्रव्य के वर्णच्छत्र के चित्र अपने पास हों । इसलिये प्रारंभ में इसका विचार ही छोड़ देना चाहिए। फोटो के कैमेरा के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। दूरदर्शक यंत्र से सूर्य्य को देखते समय चक्षुताल के सामने एक काला शीशा अवश्य लगा लेना चाहिए ।

(ग) तारों का पहचानना—इसके लिये जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ एक अच्छे एटलस् (तारों के नकशों) की आवश्यकता है। जहाँ तक मैंने देखा है इलाहाबाद के पायोनियर प्रेस का छपा हुआ ' ईजी पाथ्स् टु दि स्टार्स ' इस काम के लिये सर्वोत्तम है । उसका मूल्य ७॥) है । उसमें भारत में किस मास में किस स्थान पर कितने बजे कौन कौन ताराव्यूह, नक्षत्र

और ग्रह देख पड़ेंगे सब बतलाया हुआ है। एक बार याम्योत्तर रेखा और मध्य-रेखा (equator) को पहचान लेने से तारों का स्थान सुगमता से मिल जाता है। (मध्य रेखा वह रेखा है जो ठीक पूर्व से पश्चिम को जाती है।) ये दोनों अयनों की सीमाओं के बीच की रेखाएँ हैं।

नीचे की सारणी में कुछ ताराव्यूहों और नक्षत्रों के देखने का समुचित समय बतलाया गया है।

ऋतु	राशि	नक्षत्र	तारे, ताराव्यूह और राशियों के बाहर के नक्षत्र
वसंत-ग्रीष्म (फाल्गुन-ज्येष्ठ).	मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या.	सिंह राशिमें मघा, कन्या राशि में स्वाती और चित्रा मिथुन में पुनर्वसु (२ तारे)	अश्लेषा, हस्त
ग्रीष्म-वर्षा (ज्येष्ठ-भाद्रपद)	कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु.	वृश्चिक राशि में ज्येष्ठा, मूल और अनुराधा	अभिजित, श्रवण
वर्षा-शरद-हेमंत (भाद्रपद-मार्ग-शीर्ष)	धनु, मकर, कुंभ, मीन.	मीन में रेवती, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ (दोनों धनु में)	पूर्व भाद्रपद, उत्तरभाद्रपद

ऋतु	राशि	नक्षत्र	तारे ताराव्यूह और राशियों के बाहर के नक्षत्र
हेमंत-वसंत (मार्गशीर्ष-फाल्गुन)	मीन, मेष, वृष मिथुन.	मेष में अश्विनी और भरणी, वृष में कृत्तिका रोहिणी आर्द्रा मृगशिरा	प्रजापति, ओरायन, आर्द्रा, सिरियस

इस में केवल मुख्य राशियों, नक्षत्रों और ताराव्यूहों के देखने का समय बतलाया गया है; यों तो प्रत्येक ऋतु में अनेक भास्वर तारे और ताराव्यूह देखे जा सकते हैं।

ग्रहों के पहचानने में कोई विशेष कठिनाई न पड़नी चाहिए। शुक्र अत्यंत चमकीला ग्रह है और सूर्य्योदय के पहले या सूर्य्योदय के पीछे देख पड़ता है। लगभग २३ घंटे तक उसका स्पष्ट दर्शन होता है। बुध भी सूर्य्य के पास ही देख पड़ता है। वह भी बहुत चमकीला परंतु शुक्र से नीचा रहता है। मंगल बहुत लाल होता है। बृहस्पति भी बहुत भास्वत् है और आकाश में बहुत ऊँचा चढता है। शनि में इतनी चमक नहीं होती परंतु उसके पहिचानने में भी कठिनता नहीं पड़ सकती क्योंकि वह तारों के समान स्थिर नहीं है किंतु चल है।

इस काम के लिये आधी रात के पीछे का समय प्रायः अधिक अच्छा होता है, यों जब सुभीता हो तब ही बहुत कुछ उपयोगी काम किया जा सकता है।

२. ज्योतिष के प्रधान सिद्धांत और नियम।

(१) न्यूटन का आकर्षण नियम—

"इस विश्व में प्रत्येक भौतिक पदार्थ प्रत्येक इतर भौतिक पदार्थ को एक ऐसे वल से अपनी ओर आकर्षित करता है जो इनके द्रव्यमानों पर अनुलोमतः और इनकी दूरी के वर्ग पर व्युत्क्रमतः निष्पन्न है।"

उदाहरण–यदि दो पदार्थों के द्रव्यमानों का गुणनफल ४ है और दो अन्य पदार्थों के द्रव्यमानों का गुणनफल २० है, तो पीछेवाले द्रव्यों में आकर्षण का वल पहलेवालों का $\frac{२०}{४}$ अर्थात् ५ गुणा होगा। यदि दो पदार्थों के बीच में ३ फुट का अंतर है और दो अन्य पदार्थों के बीच में १२ फुट का तो पिछले वालों में जिनमें अंतर पहले वालों से ४ गुणा है आकर्षण वल उनका $\frac{१}{(४)^{२}}$ अर्थात् $\frac{१}{१६}$ होगा।

(२) केप्लर के नियम—

(क) प्रत्येक ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते समय गोल नहीं, प्रत्युत् अंडाकार वृत्त वनाता है।

(ख) परिक्रमा करते समय पिंड की गति भिन्न भिन्न स्थलों में भिन्न होती है परंतु यदि पिंड से सूर्य तक एक रेखा खींची जाय तो यह नियत काल में आकाश के समक्षेत्र फल विभागों को पार करेगी।

(२३) ज्योतिषियों के नामों की अनुक्रमणिका।

विदेशीय।

Lexell (लेक्सेल)
Lowell (लावेल)
Maunders (मांडर्स)
Newcomb (न्यूकोम्ब)
Newton, Sir Issac (सर आइज़क न्यूटन)
Olbers (ऑल्बर्स)
Piazzi (पिआज़ी)
Pickering (पिकरिंग)
Ptolemy (टालेमी)
Schiaparelli (शियपैरेली)
Schwabe (श्वेब)
Secchi (सेची)
Struve (स्ट्रूव)
Ulugh Beg (उलुग़ बेग)
Vogel (वोजेल)
Wolf (वुल्फ़)

भारतीय

आर्य्यभट्ट
चन्द्रशेखर सिंह सामंत
बापूदेव शास्त्री
ब्रह्मगुप्त
वाराहमिहिर
सुधाकर द्विवेदी

---

(२४) खगोलवर्त्ती पिंडो के नामों की अनुक्रमणिका ।

ताराव्यूह, राशि, नक्षत्र और तारे ।

Aries (मेष)
Taurus (वृष)
Gemini (मिथुन)
Cancer (कर्क)
Leo (सिंह)
Virgo (कन्या)
Libra (तुला)
Scorpio (वृश्चिक)
Sagittarius (धनु)
Capricornus (मकर)
Aquarius (कुंभ)
Pisces (मीन)
Alcor (अरुंधती)
Algol (पल्गोल)
Aldebaran (रोहिणी)
Andromeda (एँड्रोमेडा)
Autares (ज्येष्ठा)
Arcturus (स्वाती)
Auigal (प्रजापति)
Capella (ब्रह्महृदय)
Castor and Pollux (पुनर्वसु)
Cepheus (सोफ़ियस)
Corona Borealis (कोरोना बोरियलिस)
Cygnus (सिग्नस)
Lyra (लायरा)
Mira Ceti (मायरा सेटी)
Mizar (वसिष्ठ)
Orion (ओरायन)
Pegasus (पेगेसस)
Perseus (पर्सियस)
Pleiades (कृत्तिका)
Polaris (ध्रुव)
Regulus (मघा)
Serpeus (सर्प, सर्पेस)
Sirius (सिरियस)
Spica (चित्रा)
Sun (सूर्य्य)
Ursa Major (सप्तर्षि)

Zodiac (राशिचक्र)
(लैंबडा) 34,35 Scorpionis (मूल)
(थीटा, डेल्टा) Scorpionis (अनुराधा)
(सिग्मा) Piscium (रेवती)
(डेल्टा) Sagittarii (पूर्वाषाढ़)
(टाओ, फाई) Sagittarii (उत्तराषाढ़)
(आल्फा बीटा, गामा) Arietis (अश्विनी)
35, 41 Arietis (भरणी)
133, 135 Tauri (आर्द्रा)
(एप्सिलान) Hydrae (अश्लेषा)
(गामा) 7, 8 Corvi (हस्त)
(आल्फा) Lyrae (अभिजित)
(आल्फा) Aquilae (श्रवण)
(आल्फा) Pegasi (पूर्वभाद्रपद)
(गाम) Pegasi (उत्तरभाद्र-पद)
(आल्फा) Centauri (आल्फ़ा संटारी)
61 Cygni (६१ सिग्नी)
113, 116, 117, Tauri (मृगशिरा)

ग्रह और उपग्रह ।

Mercury (बुध)
Venus (शुक्र)
Earth (पृथ्वी, पृथिवी)
Mars (मंगल)
Asteroids (अवांतर ग्रह)
Jupiter (बृहस्पति, गुरु)
Saturn (शनि)
Uranus (युरेनस)
Neptune (नेपच्यून)
Moon (चंद्रमा)
Phobos (फ़ोबस)
Deimos (डाइमस)
Ceres (सेरेस)
Astraea (ऐस्ट्रीया)
Pallas (पैलस)
Juno (जूनो)
Vesta (वेस्टा)
Eros (एरोस)
Ganymede (गैनिमीड)
Titan (टाइटन)
Phebe (फ़ीब)

केतु ।

Biela's Comet (विएला केतु)
Brooks' ,, (ब्रुक्स ,,)
Di Vicos' ,, (डि वाइको ,,)

Donati „ (डोनेटि केतु)
Encke's „ (एंकि „)
Faye's „ (फ़े „)
Halley's „ (हालि केतु)
Holme's „ (होम्स „)
Lexell's „ (लेक्सेल „)

---

(२५) शब्द कोष ।

A.

Altazimuth = दिगंशकोटि यंत्र

Annular eclipse = वलय-ग्रहण

Astrology=फलित ज्योतिष

Astronomy = गणित ,,

Axis – अक्ष

B.

Belt = मेखला

Body = पिंड

Bolide = अग्निकंदुक

C.

Canal=नहर

Chromosphere=वर्णमंडल

Coma=नाभ्यावरण

Comet=केतु

Conjunction, Superior = प्रधान युति

Conjuntion, Inferior = लघु युति

Constellation = ताराव्यूह

Corona = प्रभामंडल

D.

Directly = अनुलोमतः

E.

Earth-shine = पार्थिव प्रकाश

Ecliptic=क्रांतिवृत्त

Ellipse = दीर्घवृत्त

Elongation = प्रतान

Epicycle = उपचक्र

Equator=मध्यरेखा

Ether = आकाश

Eye-piece=चक्षुताल

F.

Focus=नाभि

H.

Hindu Notation=हिंदू संकेत

I.

Inversely=व्युत्क्रमतः

L.

Light years = ज्योतिर्वर्ष

M.

Magnetic Storm = चुंबकीय क्षोम

Meridian=याम्योत्तर रेखा
Meteor=उल्का
Meteoric dust=उल्का धूलि
Milky way=आकाशगंगा
Mirror=दर्पण

N.

Nebula=नभस्तूप
Node=संपात
Nucleus=केतुनाभि

O.

Observatory=वेधालय
Opposition=षड्भांतर
Oasis=शाद्वल

P.

Pacific Ocean=शांत महासागर
Parallax=कृत्रिम स्थानभेद
Periodic=नियत कालिक
Photosphere=प्रकाश-मंडल
Planet=ग्रह
Planet, Outer=बहिर्ग्रह
Planet, Inner=अंतर्ग्रह
Prominences=शिखर

R.

Reversing Layer=प्रत्यादर्शक स्तर
Revolution=परिभ्रमण
Ring=वलय
Rotation=अक्षभ्रमण

S.

Satellite=उपग्रह
Solar year=सौर वर्ष
Spectroscope=रश्मि-विश्लेषक यंत्र
Spectrum=वर्णच्छत्र
Star=तारा, नक्षत्र
Star-drifts=तारा-प्रवाह
Stars, Binary=द्विदैहिक तारे
Stars, Tertiary=त्रिदैहिक तारे
Stars, quaternary=चतुर्दैहिक तारे
Stars, Multiple=बहुदैहिक तारे
Stars, Temporary=अल्पकालिक तारे
Stars, Variable=विकारी तारे
Sun-spots=सूर्यलांछन
System, Solar=सौरचक्र
System, terrestrial=पार्थिव चक्र

System, Ptolemaic=
टालेमेइक सिद्धांत

T.

Tail=पुच्छ
Telescope=दूरदर्शक यंत्र
Telescope, Refracting=
वर्तनात्मक यंत्र
Telescope, Reflecting=
परावर्त्तनात्मक यंत्र
Thermometer=घर्ममात्र
Transit=संक्रमण

U.

Universe=विश्व, जगत्,
लोक
Universe, Outer=
लोकांतर, बाह्य जगत्

V.

Velocity=वेग, प्रगति

Z.

Zodiacal Sign=राशि
Zodiacal Light=
राशिचक्र प्रकाश

Printed by G. K. Gurjar,
at the Shri Lakshmi Narayan Press,
Benares City.

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श-जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा ।
(५) " २ " "
(६) " ३ " "
(७) राणा जगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.
(१०) भौतिक-विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी , एल टी ।
(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय ।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी ए ।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा ।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए. ।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी ।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।

(२०) हिंदुस्तान, पहला खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी
(२१) „ „ दूसरा खंड— „ „
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद ।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल